दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (गुजरात) का मुखपत्र

धम्म सउच्च होइ मण सुद्धइ।
धम्म सउच्च वयणघण गिद्धइ॥
धम्म सउच्च लोहवज्जंतउ।
धम्म सउच्च सुतवपहि जंतउ॥

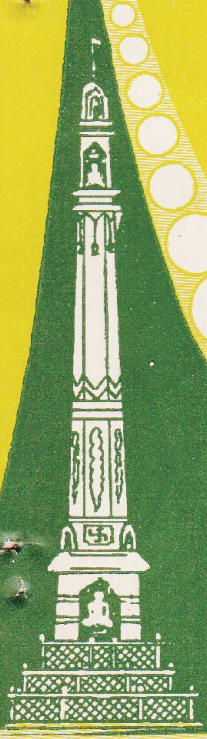

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३२ : अंक ११ [३८३] मई, १९७७

आत्मधर्म [३८३]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ जगतगुरु कब निज आतम ध्याऊँ
२ तुम भी भगवान हो
३ संपादकीय : उत्तम शौच
४ परमार्थ और व्यवहार :
वाच्य और वाचक
[समयसार प्रवचन]
५ जयति जयति वीर:
[नियमसार प्रवचन]
६ सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय
[परमात्मप्रकाश प्रवचन]
७ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
८ ज्ञान-गोष्ठी
९ समाचार दर्शन
१० पाठकों के पत्र
१२ प्रबंध संपादक की कलम से

शौचधर्म से मन पवित्र होता है। शास्त्रानुकूल वचनों से शौचधर्म की वृद्धि होती है। यह शौचधर्म लोभ कषाय का अभाव करनेवाला व भव्यों का सुतप है। **- महाकवि रइधू**

(मूल छंद मुखपृष्ठ पर दिया गया है)

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३२ [३८३] अंक : ११

जगतगुरु कब निज आतम ध्याऊँ॥ टेक॥

नग्न दिगम्बर मुद्रा धरिके,
कब निज आतम ध्याऊँ।
ऐसी लब्धि होय कब मोकूँ,
जो निजवाँछित पाऊँ॥ जगतगुरु०॥

कब गृहत्याग होऊँ बनवासी,
परम पुरुष लौ लाऊँ।
रहूँ अडोल जोड़ पद्मासन,
कर्म कलंक खपाऊँ॥ जगतगुरु०॥

केवलज्ञान प्रगट करि अपनो,
लोकालोक लखाऊँ।
जन्म-जरा-दुख देत जलांजलि,
हो कब सिद्ध कहाऊँ॥ जगतगुरु०॥

सुख अनन्त बिलसूँ तिहि थानक,
काल अनन्त गमाऊँ।
'मानसिंह' महिमा निज प्रगटे,
बहुरि न भव में आऊँ॥ जगतगुरु०॥

तुम भी भगवान हो!

बालकों के प्रति सहज उद्‌गार प्रकट करते हुए स्वामीजी कहते हैं :-

देखो भाई! हम तुम्हें बालक नहीं मानते, भगवानस्वरूप मानते हैं। आत्मा तो भगवानस्वरूप है; बालक आदि तो शरीर की अवस्था है, और राग होता है, वह क्षणिक विकारी अवस्था है, उसके पीछे शक्ति में भगवान ज्ञानानंदस्वरूप विराजमान हैं।

अंदर में पूर्णानंद का नाथ भगवान विराजमान है। उसका ध्यान करने से पर्याय में भगवान प्रकट होता है, प्राप्य की प्राप्ति होती है। ऐसे चैतन्य भगवान का स्वरूप सुनते-सुनते उसकी रुचि में सत्य के संस्कार पड़ते जाते हैं, और वे संस्कार बढ़ते-बढ़ते बाहर आयेंगे। जैसे - मिट्टी के कोरे घड़े में पानी की बूँद छिड़कने से वह पहले दिखती नहीं, परंतु पानी डालने पर घड़े में अवश्य पानी दिखता है - उसीप्रकार बालक हैं।

सम्पादकीय

उत्तम शौच

एक विश्लेषण

'शुचेर्भावः शौचम्' शुचिता अर्थात् पवित्रता का नाम शौच है। शौच के साथ लगा 'उत्तम' शब्द सम्यग्दर्शन की सत्ता का सूचक है। अतः सम्यग्दर्शन के साथ होनेवाली वीतरागी पवित्रता ही उत्तम शौचधर्म है।

शौचधर्म की विरोधी लोभ कषाय मानी गयी है। लोभ को पाप का बाप कहा जाता है, क्योंकि जगत में ऐसा कौनसा पाप है जिसे लोभी न करता हो। लोभी क्या नहीं करता? उसकी प्रवृत्ति जैसे भी हो, येन-केन-प्रकारेण धनादि भोग-सामग्री इकट्ठी करने की ही रहती है।

लोभी व्यक्ति की प्रवृत्ति का चित्रण महापंडित टोडरमलजी ने इसप्रकार किया है :-

''जब इसके लोभ कषाय उत्पन्न हो, तब इष्ट पदार्थ के लाभ की इच्छा होने से, उसके अर्थ अनेक उपाय सोचता है। उसके साधनरूप वचन बोलता है, शरीर की अनेक चेष्टा करता है, बहुत कष्ट सहता है, सेवा करता है, विदेश गमन करता है; जिसमें मरण होना जाने, वह कार्या भी करता है। जिनमें बहुत दुःख उत्पन्न हो, ऐसे आरंभ करता है। तथा लोभ होने पर पूज्य व इष्ट का भी कार्य हो, वहाँ भी अपना प्रयोजन साधता है, कुछ विचार नहीं रहता। तथा जिस इष्ट वस्तु की प्राप्ति हुई है, उसकी अनेक प्रकार से रक्षा करता है। यदि इष्ट वस्तु की प्राप्ति न हो या इष्ट का वियोग हो तो स्वयं बहुत संतापवान होता है, अपने अंगों का घात करता है तथा विष आदि से मर जाता है। ऐसी अवस्था लोभ होने पर होती है।'' (मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ५३)

आचार्य शुभचंद्र ने 'ज्ञानार्णव' के उन्नीसवें सर्ग में तो यहाँ तक लिखा है :-

स्वामिगुरुबन्धुवृद्धानबलाबालांश्च जीर्णदीनादीन्।
व्यापाद्य विगतशंको लोभार्तो वित्तमादत्ते॥७०॥

ये केचित्सिद्धान्ते दोषाः श्वभ्रस्य साधकाः प्रोक्ताः।
प्रभवन्ति निर्विचारं ते लोभादेव जन्तूनाम्॥७१॥

इस लोभ कषाय से पीड़ित हुआ व्यक्ति अपने मालिक, गुरु, बंधु, वृद्ध, स्त्री, बालक, तथा क्षीण, दुर्बल, अनाथ, दीनादि को भी निःशंकता से मारकर धन को ग्रहण करता है। नरक ले जानेवाले जो-जो दोष सिद्धांतशास्त्रों में कहे गये हैं, वे सब लोभ से प्रकट होते हैं।

पैसे का लोभी व्यक्ति सदा जोड़ने में ही लगा रहता है, भोगने का उसे समय ही नहीं मिलता। पशुओं का लोभ पेट भरने तक ही सीमित रहता है, पेट भर जाने पर वह कुछ समय को ही सही संतुष्ट हो जाता है; पर मानव की समस्या मात्र पेट भरने तक सीमित नहीं रही, वह पेटी भरने के चक्कर में सदा ही असंतुष्ट बना रहता है।

दिन-रात हाय पैसा! हाय पैसा!! उसे पैसे के अतिरिक्त कुछ दिखायी ही नहीं देता। वह यह नहीं समझता कि अनेक प्रयत्न करने पर भी पुण्योदय के बिना धनादि अनुकूल संयोगों को प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि धनादि संयोगों की प्राप्ति पूर्वकृत पुण्य का फल है।

इसी बात की ओर ध्यान आकर्षित करने हेतु 'भगवती आराधना' में लिखा है :-

लोभे कए वि अत्थो ण होइ पुरिसस्स अपडिभोगस्स।
अकएवि हवदि लोभे अत्थो पडिभोगवंतस्स॥१४३६।

लोभ करने पर भी पुण्यरहित मनुष्य को द्रव्य मिलता नहीं है और न करने पर भी पुण्यवान को धन की प्राप्ति होती है। अतः धन की प्राप्ति में लोभ-आसक्ति कारण नहीं, परंतु पुण्य ही कारण है। ऐसा विचार कर लोभ का त्याग करना चाहिये।

इसके पश्चात् उच्छिष्ट धन के लोभ के त्याग की प्रेरणा देते हुए लिखा है :-

सव्वे वि जए अत्था परिगहिदा ते अणंत खुत्तो मे।
अत्थेसु इत्थ कोमज्झ विभओ गहिदविजडेसु॥१४३७॥

इह य परत्तए लोए दोसे बहुए य आवहइ लोभो।
इदि अप्पणो गणित्ता णिज्जेदव्वो हवदि लोभो॥१४३८॥

इस लोक में अनंतबार धन प्राप्त किया है, अतः अनंतबार ग्रहणकर त्यागे हुए इस धन के विषय में आश्चर्यचकित होना व्यर्थ है।

इस लोक व परलोक में यह लोभ अनेक दोष उत्पन्न करता है - ऐसा जानकर लोभ पर विजय प्राप्त करना चाहिये।

आज की दुनियाँ में रुपये-पैसे के लोभ को ही लोभ माना जाता है। कोई विषय-कषाय में ही क्यों न खर्चे, पर दिल खोलकर खर्च करनेवालों की दरियादिल एवं कम खर्च करनेवालों को लोभी कहा जाता है।

किसी ने आपको चाय-नाश्ता करा दिया, सिनेमा दिखा दिया तो वह आपकी दृष्टि में निर्लोभी हो गया और यदि उसके भी चाय-नाश्ते का बिल आपको चुकाना पड़ा या सिनेमा के टिकट आपको खरीदने पड़े तो आप कहने लगेंगे - हाय राम! बड़े लोभी से पाला पड़ा।

इसीप्रकार धर्मार्थ संस्था के लिये ही सही, आप चंदा मांगने गये और किसी ने आपकी कल्पना से कम चंदा दिया या न दिया तो लोभी, और यदि कल्पना से अधिक दे दिया तो निर्लोभी; चाहे उसने यश के लोभ में ही अधिक चंदा क्यों न दिया हो। इसप्रकार यश के लोभियों को प्राय: निर्लोभी मान लिया जाता है।

ऊपर से उदार दिखनेवाला अंदर से बहुत बड़ा लोभी भी हो सकता है। इस बात की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता।

अरे भाई! पैसे का ही लोभ सब-कुछ नहीं है, लोभ तो कई प्रकार का होता है। यश का लोभ, रूप का लोभ, नाम का लोभ, काम का लोभ आदि।

वस्तुत: तो पाँचों इन्द्रियों के विषय की एवं मानादि कषायों की पूर्ति का लोभ ही लोभ है। पैसे का लोभ तो कृत्रिम लोभ है। यह तो मनुष्य भव की नयी कमाई है। लोभ तो चारों गतियों में होता है। किंतु रुपये-पैसे का व्यवहार तो चारों गतियों में नहीं है। यदि रुपये-पैसे के लोभ को ही लोभ मानें तो अन्य गतियों में लोभ की सत्ता संभव न होगी। जबकि कषायों की बाहुल्यता का वर्णन करते हुए आचार्यों ने लोभ की अधिकता देवगति में बतायी है।

नारकियों में क्रोध, मनुष्यों में मान, तिर्यंचों में माया और देवों में लोभ की प्रधानता होती है। देवगति में पैसे का व्यवहार नहीं है। अत: लोभ को पैसे की सीमा में कैसे बाँधा जा सकता है?

पैसा तो विनिमय का एक कृत्रिम साधन है। रुपये-पैसे में ऐसा कुछ नहीं है कि जो जीव को लुभाये। लोग न उसके रूप पर लुभाते हैं, न रस पर।

जिन कागज के नोटों पर यह मानव मर मिटने को फिर रहा है, यदि वे नोट गाय के सामने रखो तो वह सूँघैगी भी नहीं; जबकि घास पर झपट पड़ेगी। गाय की दृष्टि में नोटों की कीमत घास के बराबर भी नहीं, पर यह अपने को सभ्य कहनेवाला मानव उनके पीछे दिन-रात एक किये डालता है। ऐसा क्या जादू है उनमें ?

उनके माध्यम से पंचेनिद्रयों के विषयों की प्राप्ति होती है, मानादि कषायों की पूर्ति होती है। यही कारण है कि मानव उनके प्रति लुभा जाता है। यदि उनके माध्यम से भोगों की प्राप्ति संभव न हो, यशादि की प्राप्ति संभव न हो, तो उनका कोई भटे के भी भाव न पूछे।

पैसे की प्रतिष्ठा आरोपित है, स्वयं की नहीं; अत: पैसों का लोभ भी आरोपित है।

रूप के लोभी, नाम के लोभी रुपये-पैसों को पानी की तरह बहाते कहीं भी देखे जा सकते हैं। कहीं कोई सुंदर कन्या देखी और राजा साहब लुभा गये। फिर क्या ? कुछ भी हो, वह कन्या मिलनी ही चाहिये। ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिल जावेंगे पुराणों में, इतिहास में। राजा श्रेणिक चेलना के, पवनंजय अंजना के रूप पर ही तो लुभाये थे!

नाम के लोभी भी यह कहते मिलेंगे। भाई! सबको एक दिन मरना ही है। कुछ करके जावो तो नाम अमर रहेगा। आत्मा को मरणशील और नाम को अमर माननेवाले और कौन हैं ? नाम के लोभी ही तो हैं। क्या दम है नाम की अमरता में ? एक नाम के अनेक व्यक्ति होते हैं, भविष्य में कौन जानेगा यह किसका नाम था ?

नाम की अरमता के लिये पाटियों पर नाम लिखानेवालों! जरा यह तो सोचों - भरत चक्रवर्ती जब अपना नाम लिखने गये तो वहाँ चक्रवर्तियों के नाम से शिला भरी पायी। एक नाम मिटाकर अपना नाम लिखना पड़ा। वे सोचने लगे - आगे आनेवाला चक्रवर्ती मेरा नाम मिटाकर अपना नाम लिखेगा।

और न जाने कितने-कितने प्रकार के लोभी होते हैं ? चार प्रकार के लोभ तो आचार्य अकलंकदेव ने ही 'राजवार्तिक' में गिनाये हैं - जीवन-लोभ, आरोग्य-लोभ, इंद्रिय-लोभ और उपभोग-लोभ।

आचार्य अमृतचंद्र ने भी 'तत्त्वार्थसार' में चार प्रकार के लोभ की चर्चा की है। वे उसमें लिखते हैं:-

परिभोगोपभोगत्वं जीवितेन्द्रियभेदतः।
चतुर्विधस्य लोभस्य निवृत्तिः शौचमुच्यते॥१७॥

भोग, उपभोग, जीवन एवं इंद्रियों के विषयों का – इसप्रकार लोभ चार प्रकार का होता है। इन चारों प्रकार के लोभ के त्याग का नाम शौचधर्म है।

उक्त दोनों प्रकारों में मात्र इतना ही अंतर है कि अकलंकदेव ने उपभोग में भोग और उपभोग दोनों सम्मिलित कर लिये हैं तथा आरोग्य का लोभ अलग से भेद कर लिया है।

लोभ के उक्त प्रकारों में रुपये-पैसे का लोभ कहीं भी नहीं आता है।

लोभ के उक्त प्रकारों पर ध्यान दें तो पंचेन्द्रियों के विषयों के लोभ की ही प्रमुखता दिखायी देती है। भोग और उपभोग इंद्रियों के विषय ही तो हैं। शारीरिक आरोग्य भी इंद्रियों की विषय-ग्रहण शक्ति से ही संबंधित है, क्योंकि पाँच इंद्रियों के अतिरिक्त और शरीर क्या है? इंद्रियों के समुदाय का नाम ही तो शरीर है। जीवन का लोभ भी शरीर के संयोग बने रहने की लालसा के अतिरिक्त क्या है? इसप्रकार हम देखते हैं कि पंचेन्द्रिय के विषयों में उक्त सभी प्रकार समा जाते हैं।

पंचेन्द्रियों के विषयों के लोभ में फंसे जीवों की दुर्दशा का चित्रण करते हुए लोभ के त्याग की प्रेरणा देते हुए परमात्मप्रकाशकार इसप्रकार लिखते हैं :-

रूवि पयंगा सद्दि मय गय फासहि णासंति।
अलिउल गंधइँ मच्छ रसि किम अणुराउ करंति॥२॥११२॥

जोइय लोहु परिच्चयहि लोहु ण भल्लउ होइ।
लोहासत्तउ सयलु जगु दुक्खु सहंतउ जोइ॥२॥११३॥

रूप के लोभी पतंगे दीपक पर पड़कर, कर्णप्रिय शब्द के लोभी हिरण शिकारी के बाण में बंधकर, स्पर्श (काम) के लोभी हाथी हथिनी के लोभ से गड्ढे में पड़कर, गंध के लोभी भौंरे कमल में बंधकर और रस के लोभी मच्छ धीवर के काँटे में बिंधकर या जाल में फँसकर दुःख उठाते हैं, नाश को प्राप्त होते हैं। हे जीव! ऐसे विषयों का क्यों लोभ करते हो, उनसे अनुराग क्यों करते हो?

हे योगी ! तू लोभ को छोड़। यह लोभ किसी प्रकार अच्छा नहीं। क्योंकि संपूर्ण जगत इसमें फंसा हुआ दुःख उठा रहा है।

आत्मस्वभाव को आच्छन्न करनेवाली शौचधर्म की विरोधी लोभ कषाय जब अपनी तीव्रता में होती है तो अन्य कषायों को भी दबा देती है। लोभी व्यक्ति मानापमान का विचार नहीं करता। वह क्रोध को भी पी जाता है।

लोभ दूसरी कषायों को तो काटता ही है, स्वयं को भी काटता है। यश का लोभी धन का लोभ छोड़ देता है।

हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य रामचंद्र शुक्ल लोभियों की वृत्ति पर व्यंग करते हुए लिखते हैं:-

''लोभियों का दमन योगियों के दमन से किसी प्रकार कम नहीं होता। लोभ के बल से वे काम और क्रोध को जीतते हैं, सुख की वासना का त्याग करते हैं, मान-अपमान में समान भाव रखते हैं। अब और चाहिये क्या ? जिससे वे कुछ पाने की आशा रखते हैं, वह यदि उन्हें दस गालियाँ भी देता है तो उनकी आकृति पर न रोष का कोई चिह्न प्रकट होता है और न मन में ग्लानि होती है। न उन्हें मक्खी चूसने में घृणा होती है और न रक्त चूसने में दया। सुंदररूप देखकर अपनी एक कौड़ी भी नहीं भूलते। करुण से करुण स्वर सुनकर वे अपना एक पैसा भी किसी के यहाँ नहीं छोड़ते। तुच्छ से तुच्छ व्यक्ति के सामने हाथ फैलाने में लज्जित नहीं होते।'' (चिंतामणि, भाग १, पृष्ठ ५८)

वे और भी लिखते हैं :-

''पक्के लोभी लक्ष्य-भ्रष्ट नहीं होते, कच्चे हो जाते हैं। किसी वस्तु को लेने के लिये कई आदमी खींचतान कर रहे हैं। उनमें से एक क्रोध में आकर उस वस्तु को नष्ट कर देता है, उसे पक्का लोभी नहीं कह सकते; क्योंकि क्रोध ने उसके लोभ को दबा दिया, वह लक्ष्य-भ्रष्ट हो गया।'' (चिंतामणि, भाग १, पृष्ठ ५८)

लालसा, लालच, तृष्णा, अभिलाषा, चाह आदि लोभ के अनेक नाम हैं। प्रेम या प्रीति भी लोभ के ही नामांतर हैं। जब लोभ किसी वस्तु के प्रति होता है तो उसे लोभ या लालच

कहा जाता है, पर जब वही लोभ किसी व्यक्ति के प्रति होता है तो उसे प्रीति या प्रेम नाम दिया जाता है।

पंचेन्द्रिय के विषयों के प्रति प्रेम लोभ ही तो है। पंचेन्द्रिय के विषय चेतन भी हो सकते हैं और अचेतन भी। चेतन विषयों के प्रति हुए रागात्मक भाव को प्रेम एवं अचेतन पदार्थों के प्रति हुए रागात्मक भाव को प्रायः लोभ कह दिया जाता है। पुरुष के स्त्री के प्रति आकर्षण को प्रेम संज्ञा ही दी जाती है।

इस संबंध में शुक्लजी के विचार और दृष्टव्य हैं :-

''पर साधारण बोलचाल में वस्तु के प्रति मन की जो ललक होती है, उसे 'लोभ' और किसी व्यक्ति के प्रति जो ललक होती है, उसे 'प्रेम' कहते हैं। वस्तु और व्यक्ति के विषय-भेद से लोभ के स्वरूप और प्रवृत्ति में बहुत भेद पड़ जाता है, इससे व्यक्ति के लोभ को अलग नाम दिया गया है। पर मूल में लोभ और प्रेम दोनों एक ही हैं।'' (चिंतामणि, भाग १, पृष्ठ ५९)

परिष्कृत लोभ को उदात्त प्रेम, वात्सल्य आदि अनेक सुंदर-सुंदर नाम दिये जाते हैं; पर वे सब आखिर हैं तो लोभ के रूपान्तर ही। माता-पिता, पुत्र-पुत्री आदि के प्रति होनेवाले राग को पवित्र ही माना जाता है।

कुछ लोभ तो इतना परिष्कृत होता है कि वह लोभ-सा ही नहीं दिखता। उसमें लोगों को धर्म का भ्रम हो जाता है। स्वर्गादि का लोभ इसीप्रकार का होता है।

बात बुंदेलखंड की है, बहुत पुरानी। एक सेठ साहब को उनके स्नेही पंडितजी लोभी कहा करते थे। एक बार सेठ साहब ने पंडितजी से पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाने एवं गजरथ चलवाने का विचार व्यक्त किया तो पंडितजी तपाक से बोले - तुम जैसे लोभी क्या गजरथ चलायेंगे, क्या पंचकल्याणक करावेंगे ?

सेठ साहब के बहुत आग्रह करने पर उन्होंने कहा - अच्छा, आप करवाना ही चाहते हैं तो पाँच हजार रुपया मंगाइये। पंडितजी का कहना था कि सेठ साहब ने तत्काल हजार-हजार रुपयों की पाँच थैलियाँ लाकर पंडितजी के सामने रख दीं। उस समय नोटों का प्रचलन बहुत कम था। एक-एक थैली का वजन १०-१० किलो से भी अधिक था।

पंडितजी के कहने पर पाँच मजदूर बुलवाये गये तथा उनको थैलियाँ देकर बेतवा नदी के किनारे चलने को कहा। साथ में सेठजी और पंडितजी थी थे।

गहरी धार के किनारे पहुँच कर पंडितजी ने सेठजी से कहा कि इन रुपयों को नदी की गहरी धार में फेंक दो और घर चलकर गजरथ की तैयारी करो। जब सेठजी बिना मीन-मेख किये फेंकने को तैयार हो गये तो पंडितजी ने रोक दिया और कहा अब तुम पंचकल्याणक करा सकते हो। तात्पर्य यह कि यह समझो कि पाँच हजार तो पानी में गये, अब और हिम्मत हो तो आगे बात करो।

उस समय के पाँच हजार आज के पाँच लाख के बराबर थे। पंडितजी सेठजी का हृदय देखना चाहते थे। बाद में बहुत जोरदार पंचकल्याणक हुआ। सेठजी ने दिल खोलकर खर्च किया। अंत में 'अब आप मुझसे एक बार और लोभी कहिये।' - कहकर सेठ साहब पंडितजी की ओर देखकर मुस्कराने लगे।

तब पंडितजी ने कहा - 'लोभी, लोभी और महालोभी।'

क्यों और कैसे ? ऐसा पूछने पर वे कहने लगे - इसलिये कि जब आपसे यह धन यहाँ न भोगा जा सका तो अगले भव में ले जाने के लिये यह सब कुछ कर डाला। अगले भव तक के लिये भोगों का इंतजाम करनेवाले महालोभी नहीं तो क्या निर्लोभी होंगे ?

स्वर्गादि के लोभ में धर्म के नाम पर सब कुछ करना यद्यपि लोभ ही है, तथापि ऐसे लोभी जगत में धर्मात्मा-से दिखते हैं।

आचार्यों ने तो मोक्ष को चाहनेवालों को भी लोभियों में ही गिना है, क्योंकि आखिर चाह लोभ ही तो है, चाहे किसी की भी क्यों न हो।

[उत्तरार्द्ध अगले अंक में]

परमार्थ और व्यवहार

वाच्य और वाचक

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की आठवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ पर दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है :-

जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं ॥८॥

जैसे अनार्य जन को अनार्य भाषा के बिना किसी भी वस्तु का स्वरूप ग्रहण कराने के लिये कोई समर्थ नहीं है, उसीप्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है।

शिष्य ने प्रश्न किया है कि हे प्रभु! आपने भेदरूप व्यवहार को बिल्कुल गौण किया तो फिर एक परमार्थ का ही उपदेश देना था। व्यवहार के उपदेश की क्या आवश्यकता है? उसके उत्तर में आचार्यदेव कहते हैं।

जैसे अनार्यजन को अनार्य भाषा के बिना कुछ भी समझाना शक्य नहीं है, उसीप्रकार भेदकथनरूप व्यवहार बिना परमार्थ को कोई नहीं समझा सकता। जैसे कोई अंग्रेजी भाषा ही जानता हो, वह अंग्रेजी भाषा में कहने पर ही समझेगा; उसीप्रकार अनार्य अर्थात् परमार्थ से अपरिचित व्यवहारीजन को व्यवहार अर्थात् गुण-गुणी का भेद करके समझाया जाता है।

जब किसी म्लेच्छ को कोई ब्राह्मण 'स्वस्ति' शब्द कहे, तब वह म्लेच्छ उस शब्द के वाच्य-वाचक संबंध के ज्ञान से रहित होने से कुछ भी नहीं समझता और ब्राह्मण के सामने मेंढ़क के समान आँखें फाड़कर एकटक देखता ही रहता है, अर्थात् म्लेच्छ ब्राह्मण का अनुकरण करता है। मेढ़क से तुलना की गयी है, उसमें मेंढ़क के समान अनुकरण करने की सरलता मात्र ग्रहण करना।

आजकल लोग अनुकरण तो करते नहीं और दोष निकालते हैं कि ऐसी अध्यात्म की

बात इस काल में कहना चाहिये क्या ? यहाँ तो म्लेच्छ अनुकरण करने के लिये तैयार होकर ब्राह्मण के सामने एकटक देखता है, यह लौकिक सरलता का प्रतीक है।

आँखें फाड़कर एकटक देखते रहना श्रोता की योग्यता का प्रतीक है। यहाँ सभा में ऊँघनेवाले श्रोता की बात नहीं है। म्लेच्छ समझता नहीं है, फिर भी ऊबता नहीं है। 'स्वस्ति' शब्द का अर्थ समझने की जिज्ञासा है – आँख मींचकर नहीं सुनता, बल्कि समझने की पूर्ण तैयारी और पात्रता है।

तात्पर्य यह है कि सत्य समझने की दरकार रहित और अन्धश्रद्धावाला श्रोता नहीं होना चाहिये। मन को स्थिर रखकर, गहराई में 'स्वस्ति' समझने की जिज्ञासा हो, बेदरकारी और निरुत्साह नहीं होना चाहिये। अंतर में एक ही लगन है कि ब्राह्मण जो कहता है, उसे धैर्य से समझ लूं। लौकिक में भी इतनी विनय है।

स्वयं समझने का कामी होकर एकटक देखता रहता है। इसमें प्रथम देशनालब्धि होने पर पाँचों लब्धियों की संधि बतायी है।

क्षयोपशमलब्धि – आँखें फाड़कर देखते ही रहने में क्षयोपशमलब्धि है। उसमें हित स्वरूप क्या है ? यह समझने की ताकत बतायी है।

विशुद्धिलब्धि – मंदकषाय होने पर तत्त्वविचार करने की पात्रता आयी है।

देशनालब्धि – ज्ञानी के पास से शुद्धात्मतत्त्व के उपदेश का श्रवण, ग्रहण, और धारणारूप परिणामों की प्राप्ति देशनालब्धि है।

प्रायोग्यलब्धि – एकटक देखते रहने में तत्त्व सुनने की एकाग्रता होने पर कर्म की स्थिति का रस घटता है।

करणलब्धि – यह अंतरपरिणाम की शुद्धता से स्वतरफ ढलता हुआ भाव है। यह लब्धि सम्यग्दर्शन होते समय होती है।

किसी को ऐसा लगता है कि ये तो आत्मा की ही रट लगाये बैठे हैं। समाज का कुछ करना, दूसरों की सेवा करना, ऐसा तो कुछ कहते नहीं ? परंतु ऐसा सुनकर तो अनादि काल से पर में कर्तृत्व मानकर जीव दु:खी है। आत्मा को भूलकर अन्य सब अनंत बार कर चुका है, तो भी अभी तक भव की थकान नहीं लगी, उसे तत्त्व की बात में अरुचि होती है। यहाँ तो जैसे

मिट्टी के नये बर्तन में पानी की बूँदें पड़ें और वह तुरंत चूस ले; उसीप्रकार पात्र जीव मात्र आत्मा समझने के लिये एकटक देखते हुए उपदेश सुनता रहता है, अन्य भाव नहीं आने देता।

व्यवहारीजन, शास्त्रीय भाषा – आध्यात्मिक परिभाषा नहीं समझते। 'आत्मा आनंद निर्मल है' यह आर्य भाषा है। जो आत्मा को नहीं जानता, ऐसे मिथ्यादृष्टि को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करने के लिये समयसार का उपदेश है। जैसे मंत्री, राजा, और प्रजा के बीच में संपर्क कराते हैं; उसीप्रकार गणधरदेव, तीर्थंकर भगवान और श्रोताओं के बीच संधि करानेवाले धर्म वजीर हैं। उसीप्रकार ब्राह्मण और म्लेच्छ दोनों की भाषा जाननेवाला अन्य कोई तीसरा पुरुष या वही ब्राह्मण म्लेच्छ को 'स्वस्ति' का अर्थ उसकी भाषा में समझाता है कि 'स्वस्ति' शब्द का अर्थ 'तेरा अविनाशी कल्याण हो', ऐसा होता है।

व्यवहार के उपदेश में 'सु+अस्ति' का लक्ष्य करनेवाला 'अविनाशी कल्याण हो' ऐसा कहा है। तेरी पवित्र स्वरूपलक्ष्मी प्रगट हो, ऐसा इस आशीर्वाद का भावार्थ है। 'स्वस्ति' शब्द का ऐसा अपूर्व अर्थ सुनते ही अत्यंत आनंदमय आंसुओं से उसके नेत्र भर जाते हैं। यदि हम हर्ष प्रगट न करें तो उसे समझाने का उत्साह नहीं आयेगा, ऐसी उसमें कृत्रिमता नहीं, अपितु यहाँ तो 'अहो आपको यह कहना है' ऐसे अपूर्व आदर से हर्ष के आँसुओं से नेत्र भर जाते हैं और वह 'स्वस्ति' शब्द का अर्थ समझ जाता है। इसीप्रकार व्यवहारीजन भी वाणी के व्यवहार से परमार्थ समझ लेते हैं।

समझने की जिज्ञासावाले शिष्य को व्यवहार–परमार्थ मार्ग पर सम्यग्ज्ञानरूपी महारथ को चलानेवाले सारथी के समान अन्य कोई आचार्य अथवा उपदेशक स्वयं ही व्यवहार मार्ग में अर्थात् विकल्पसहित छठवें गुणस्थान में रहकर परमार्थ का लक्ष्य कराने के लिये व्यवहार से कहते हैं कि पुण्य–पापरहित निर्मल दर्शन–ज्ञान–चारित्र को जो सदा प्राप्त हो, वह आत्मा है, ऐसा आत्मा शब्द का अर्थ आचार्य समझाते हैं। अब तुरंत ही उत्पन्न होनेवाले अत्यंत आनंद से जिसके हृदय में सुंदर बोध–तरंगें उछलती हैं – ऐसा यह व्यवहारीजन आत्मा शब्द का अर्थ अच्छी तरह समझ जाता है।

आचार्यदेव सम्यग्ज्ञानरूपी महारथ को चलानेवाले महासारथी हैं। जो उनके रथ में बैठे, उसे सारथी ले जायेंगे। जो ज्ञानी के पास सत् समझने बैठा, वह उनके साथ ज्ञायकस्वरूप के रथ में बैठा है। छठवें–सातवें गुणस्थान के व्यवहार–परमार्थ मार्ग में वर्तते मुनिराज के आशय को जो समझने बैठा है, वह उनके साथ ही बैठा है। ऐसे जिज्ञासु शिष्य को आत्मा का अर्थ समझाते

हुए आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! दर्शन-ज्ञान-चारित्र को जो हमेशा प्राप्त हो, वही आत्मा है। जाननेवाला, देखनेवाला, प्रीति करनेवाला, एकाग्रता करनेवाला, ऐसी-ऐसी अनंत शक्तियों की सामर्थ्यवाला वह आत्मा - इसप्रकार गुण-भेदरूप व्यवहार से परमार्थ समझाया जाता है।

देखो! यहाँ गुण-भेद द्वारा अभेद को समझाया गया है। गुण-भेद को व्यवहार कहा गया है, शुभराग को नहीं। अर्थात् रागवाला, वह आत्मा ऐसा नहीं कहा, क्योंकि जो उसमें नहीं है, उससे आतमा कैसे दिखायें? शरीर-कर्म-राग आत्मा में नहीं हैं, अतः उनके अस्तित्व से आत्मा का लक्ष्य कैसे हो? परंतु दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि अनंतगुण, एकवस्तु स्वरूप अभेदरूप से आत्मा में हैं, अतः नाम से भेद उपजाकर व्यवहार से समझाते हैं कि दर्शन वह आत्मा, ज्ञान वह आत्मा।

यद्यपि वस्तुतः आत्मा में ऐसे भेद नहीं, ऐसे अनंत गुण आत्मा में अभेदरूप से हैं, अतः भेद द्वारा अभेद को समझाते हैं। भेद बिना अभेद को नहीं समझाया जा सकता, परंतु भेद आदरणीय नहीं; क्योंकि भेद के लक्ष्य से विकल्प उठता है, निर्विकल्पता नहीं होती।

इसप्रकार वर्तमान में स्वयं अनंत शक्ति का पिण्ड परमात्मतत्त्व आत्मा है। ऐसा आत्मा का अर्थ सुनकर तुरंत ही जिसकी पर-तरफ ढलती दृष्टि आत्मा की तरफ ढल गयी और आत्मा का सम्यक् भान हो गया; पहले सुन लूँ, फिर समझूँगा, ऐसे वायदेवाले जीव की बात न लेकर, सुनते ही जिसकी परिणति वाच्य ऐसे आत्मा की तरफ ढल जाती है; ऐसे तीव्र जिज्ञासु शिष्य की बात ली है। आत्मा के अनंत धर्मों में जो विशेष धर्म हैं, उनका भेद करके आत्मा बताने पर तुरंत ही जिसे अत्यंत आनंद के साथ ज्ञान की तरंगें उछलने लगती हैं, वह व्यवहारीजन शिष्य आत्मा को अच्छी तरह समझ लेता है।

देखो! कोई जीव धारणा के भ्रम से ऐसा मान ले कि हम आतमा को अच्छी तरह समझते हैं तो उसे विचार करना चाहिये कि मुझे ज्ञान के साथ अतीन्द्रिय आनन्द अनुभव में आया या नहीं। अतीन्द्रिय आनंदपूर्वक ज्ञान ने ही आत्मा को समझा है, अनुभव किया है।

श्रद्धा का विषय संपूर्ण ज्ञायक आत्मा है। इसप्रकार संपूर्ण आत्मा को लक्ष्य में लेना परमार्थ है और उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद से लक्ष्य में लेना व्यवहार है। निश्चयनय का विषय सम्यग्दर्शन नहीं, अपितु निर्मल अखंड परमार्थ आत्मा निश्चयनय का विषय है। सम्यग्दर्शन का विषय वह निश्चयनय का विषय है। गुण-गुणी के भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेदस्वरूप लक्ष्य में

लेना ही परमार्थ है। उसमें भेद की श्रद्धा, वह भी परमार्थ नहीं; क्योंकि वह भी गुण की एक अवस्था है, अतः व्यवहार है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र भी परमार्थ का विषय नहीं।

भेद का आश्रय तो अज्ञानी को अनादि से है और वह भेद को ही जानता है। उसे इसप्रकार भेद द्वारा अभेद समझाया, इतना व्यवहार तो बीच में आता ही है। परंतु 'ब्राह्मण को म्लेच्छ नहीं हो जाना चाहिये' समझने के लिये व्यवहार से भेद किया है। परन्तु भेद को ही वस्तु नहीं समझना चाहिये और समझानेवाले को भी भेद के विकल्प में नहीं अटकना चाहिये।

लोग शुद्धनय को नहीं जानते, क्योंकि शुद्धनय का विषय अभेद एकरूप वस्तु है; अशुद्धनय को ही जानते हैं, क्योंकि उसका विषय भेदरूप अनेक प्रकार हैं। अतः वे व्यवहार द्वारा ही परमार्थ समझते हैं। इसलिये परमार्थ को कहनेवाला जानकर व्यवहारनय का उपदेश दिया जाता है। इससे ऐसा नहीं समझ लेना चाहिये कि व्यवहार का आलंबन कराते हैं। लोग समझते हैं कि व्यवहार की प्रवृत्ति अर्थात् कुछ बाह्य क्रिया की जाये तो धर्म हो जायेगा परंतु ऐसा नहीं है। जब समझनेवाला स्व का अभेद लक्ष्य करके समझता है, तब भेदरूप व्यवहार को परमार्थ का निमित्त कहा जाता है।

समझने के लिये भेद किया, वह व्यवहार, परमार्थ का कारण नहीं है। क्योंकि भेद, अभेद का कारण नहीं होता; खंडदृष्टि, अखंडदृष्टि का कारण नहीं होती। भेददृष्टि का विषय राग है, जो कि विकार है और विकार द्वारा अविकारी नहीं होते।

परमार्थ समझने की तैयारी हो, वहाँ व्यवहार होता ही है अर्थात् निर्मल परमार्थ को समझाने में वह बीच में आता है। इससे व्यवहार को आदरणीय नहीं समझना चाहिये। यहाँ तो व्यवहार का आलंबन छुड़ाकर परमार्थ में पहुँचाते हैं।

इसप्रकार जगत् म्लेच्छ के स्थान पर है अर्थात् जगत में जीव मात्र परमार्थ के उपदेश से आत्मा को नहीं समझते, और व्यवहारनय म्लेच्छ भाषा के स्थान पर होने से व्यवहार द्वारा परमार्थ को समझाया जाता है। अतः अभेद को समझाने के लिये भेदरूप व्यवहार का उपदेश स्थापित करना योग्य है। परंतु जिसप्रकार म्लेच्छ को समझाते हुए ब्राह्मण को म्लेच्छ होना योग्य नहीं है; उसीप्रकार भेद अर्थात् व्यवहारनय अनुसरण करनेयोग्य नहीं है, आदर करनेयोग्य नहीं है। ●●

जयति जयति वीरः

परमपूज्य दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की संस्कृत टीका मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव ने की है। प्रथम गाथा की टीका लिखने के बाद मुनिराज एक श्लोक लिखते हैं। उस श्लोक पर हुए पूज्य स्वामीजी के प्रवचन का सार यहाँ दिया जा रहा है।

अब प्रथम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं :-

जयति जयति वीरः शुद्धभावास्तमारः। त्रिभुवनजन पूज्यः पूर्णबोधैकराज्यः।
नत दिविजसमाजः प्रास्तजन्मद्रुबीजः। समवसृतिनिवासः केवलश्रीनिवासः॥

शुद्धभाव द्वारा मार का (काम का) जिन्होंने नाश किया है, तीन भुवन के जनों को जो पूज्य हैं, पूर्णज्ञान जिनका एक राज्य है, देवों का समाज जिन्हें नमन करता है, जन्मवृक्ष का बीज जिन्होंने नष्ट किया है, समवसरण में जिनका निवास है और केवलश्री (केवलज्ञानदर्शनरूपी लक्ष्मी) जिनमें वास करती है; वे वीर जगत में जयवंत वर्तते हैं। कैसे हैं सर्वज्ञ परमात्मा? जिन्होंने आत्मा के शुद्धभाव से मार अर्थात् कामदेव का नाश किया है तथा वे त्रिभुवन द्वारा पूज्य हैं। अज्ञानी न मानें, उनकी गिनती नहीं है। त्रिभुवन में जो महान इन्द्र व चक्रवर्ती आदि हैं, वे सभी उन्हें पूजते हैं।

हे नाथ! आपको जो पहचाने, उसके लिये ही आप पूज्य हो। जो आपको न पहचाने, उसकी यहाँ गणना नहीं है। आप आचार्यदेव को पूज्य हैं, इसलिये सारे जगत को पूज्य हैं - ऐसा कहते हैं। फिर सर्वज्ञदेव को तीन लोक का राज्य है। उनके ज्ञान साम्राज्य में त्रिलोक आ जाता है। पूर्णज्ञान का ज्ञेय कौन नहीं? लोकालोक जानने में आता है। सर्वज्ञदेव को स्वर्ग के देवों का समूह नमस्कार करता है। मनुष्य तो नमस्कार करते ही हैं, इसमें क्या आश्चर्य? अरे! स्वर्ग के देव और इन्द्र भी भगवान के चरणों में नमन करते हैं।

उन्हें स्वर्ग की ऋद्धि प्राप्त हुई तो भी उसका आदर न करके भगवान का आदर करते हैं

कि हे नाथ! सच्ची केवलज्ञान की ऋद्धि तो आपने प्राप्त की है। यह पुण्य की ऋद्धि हमें आदरणीय नहीं – आदरणीय तो यह केवलज्ञान की ऋद्धि ही है। यह बाहर की स्वर्गादिक की ऋद्धि तो जड़ है, उसके स्वामी हम नहीं हैं; हम तो चैतन्य ऋद्धि के स्वामी हैं। जो ऋद्धि आपके प्रकट हुई है, वही हमारे भी हो, ऐसी भावना से हे नाथ! देवगण आपको नमस्कार करते हैं।

महावीर भगवान ने जन्म-वृक्ष के बीज का नाश किया है और समवसरण में विराजते हैं। इस टीका के रचनाकाल में तो वे मोक्ष में पधरे हैं। फिर भी टीकाकार अपने समक्ष ही भगवान विराज रहे हों – ऐसा लक्ष्य में लेकर कहते हैं कि भगवान समवसरण में विराजते हैं और इन्द्र आकर नमन करते हैं।

भगवान की दिव्यध्वनि में जो उद्घोष हुआ, उसी में से हम कहेंगे। सर्वज्ञवाणी की परंपरा हमारे पास आयी और हमने उसका भाव समझा तथा 'भगवान आज भी मानो समवसरण में विराज रहे हों और दिव्यध्वनि खिर रही हो' ऐसा आचार्यदेव कहते हैं।

जैसे जन्मदिवस पर कहते हैं कि 'आज मेरा जन्मदिन है'। इसप्रकार पुनः उस जन्मप्रसंग को ताजा बनाते हैं – वैसे ही अपने ज्ञान में सर्वज्ञ को ताजा करके आचार्यदेव कहते हैं कि हे नाथ! आप समवसरण में हमारे समीप ही विराज रहे हो। आपकी दिव्यध्वनि की परंपरा हमको मिली, इसलिये आप ही हमारे समक्ष विराजते हो, ऐसा हमें अनुभव होता है। ऐसा कहकर आचार्य ने भगवान को अपने भाव में अवतरित किया है।

भगवान की आत्मा में केवलज्ञान-दर्शनरूपी लक्ष्मी का वास है। ऐसी लक्ष्मी ही हमारे लिये आदरणीय है। आत्मा में जड़ की लक्ष्मी वास नहीं करती। भगवान समवसरण में वास करते हैं और भगवान में केवलज्ञान लक्ष्मी बसती है। जगत की जड़लक्ष्मी की प्रीति छुड़ाकर ज्ञानलक्ष्मी की प्रीति कराने के लिये केवलज्ञान को लक्ष्मी की उपमा दी है। ऐसे भगवान जयवंत वर्तते हैं। हमारा ज्ञान जयवंत वर्तता है, इसलिये भगवान जयवंत वर्तते हैं – ऐसा कहा।

भगवान के शास्त्रों का भाव अपने में जयवंत वर्तता है। इसलिये मानते हैं कि भगवान ही समवसरण में विराजते हुए जयवंत वर्तते हैं – ऐसा आनंद अंतर से आता है।

इसप्रकार 'भगवान जयवंत वर्तते हैं' – ऐसा कहकर मांगलिक किया। ●●

सम्यग्दर्शन विन दुख पाय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अध्यात्म-रस से ओतप्रोत प्रवचन आजकल परमपूज्य मुनिराज योगीन्दुदेव के ग्रंथराज 'परमात्मप्रकाश' पर चल रहे हैं।

दिनांक २९-१-७७ को अध्याय २ दोहा १९३ पर हुए गुरुदेव के प्रवचन का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल दोहा इसप्रकार है :-

कालु अणाइ अणाइ जिउ भव-सायरु वि अणंतु।
जीविं बिण्णि ण पत्ताइँ जिणु सामिउ सम्मत्तु॥

काल अनादि है, जीव भी अनादि है, और यह भवसागर भी अनादि-अनंत हैं। लेकिन इस जीव ने जिनेन्द्र भगवान और सम्यक्त्व ये दो प्राप्त नहीं किये हैं।

काल, जीव और संसार ये तीनों अनादि हैं। उसमें अनादिकाल से भटकते हुए इस जीव ने मिथ्यात्व-रागादिवश होकर अपना शुद्धात्मस्वरूप नहीं देखा, नहीं जाना। अर्थात् यह संसारी जीव अनादि काल से ही आत्मज्ञान की भावना से रहित है।

इस जीव ने स्त्री-पुत्र-धनादि पदार्थ तो अनंतबार प्राप्त किये, पर सम्यग्दर्शन और जिनराज स्वामी को आज तक भी प्राप्त नहीं किया।

जब यह आत्मा अनादि का है, तब अनादिकाल से कहीं न कहीं तो रहा ही होगा। मोक्ष में तो गया नहीं। यदि गया होता तो फिर संसार में कैसे होता? अतः स्वतःसिद्ध है कि अनादिकाल से संसार में ही रहा।

इस संसार में भ्रमण करते हुए यह अनंत बार स्वर्ग और नरक में गया, अनंत बार तिर्यंच और मनुष्य हुआ, अनंत बार नग्न दिगम्बर साधु भी हुआ; पर सम्यग्दर्शन बिना सब निरर्थक रहा।

इसने मिथ्यात्व और रागादि के वश होकर अपना शुद्धात्मस्वरूप नहीं देखा। निज

शुद्धात्मज्ञान के बिना चार गति में भ्रमण करते हुए रंचमात्र भी सुख प्राप्त नहीं किया। शास्त्रज्ञान भी अनंत बार किया, पर पूर्ण पवित्र निजशुद्धात्मा को कभी नहीं देखा, कभी नहीं जाना। विकार के वश होकर विकाररहित प्रभु की श्रद्धा और ज्ञान नहीं किया।

यह संसारी जीव अनंत काल से आत्मज्ञान की भावना से रहित है। 'पर', राग और पर्याय का ज्ञान अनंत बार किया, पर आत्मा का ज्ञान नहीं किया। आत्मज्ञान की भावना नहीं की अर्थात् स्वभाव की सन्मुखता नहीं की। स्वभाव से विमुख होकर पर्याय का ज्ञान करके अनंत काल संसार में भ्रमण किया। ३१ सागर की स्थिति से अनेक बार स्वर्ग में रहा, अरबों रुपये प्रतिदिन की आय हो, ऐसा राजा अनंत बार हुआ; किंतु आत्मज्ञान बिना मरकर नरक और तिर्यंच में ही गया।

सर्वज्ञ परमात्मा ने अनंत आत्माओं को सिद्ध समान देखा है, पर अज्ञानी ने ऐसे निज आत्मा को नहीं देखा। इसप्रकार अनंत काल में एक बार भी इस जीव ने सम्यग्दर्शन नहीं पाया।

अब कहते हैं कि एक बार भी वीतरागी सर्वज्ञदेव नहीं पाये जीव अनादि से मिथ्यादृष्टि हैं। मैं दूसरों को जीवित रख सकता हूँ, 'पर' से मेरा कल्याण होगा – ऐसी मिथ्या मान्यता होने से हल्के देवों का उपासक रहा, पर वीतरागी जिनवरदेव की भक्ति कभी नहीं की। महाविदेह में सदा जिनवरदेव विराजते हैं, वहाँ भी अनेक बार उपजा, पर जिनराज की भक्ति नहीं की; अतः अनंत काल में कभी जिनराज को प्राप्त नहीं किया।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि सम्यक्त्व कभी उत्पन्न नहीं हुआ, यह तो ठीक है; पर जिनवर स्वामी को प्राप्त नहीं किया, यह कैसे संभव है ? क्योंकि शास्त्रों में तो आता है कि अनंत बार जिनराज की भक्ति की, भव-भव में समवसरण में साक्षात् विराजमान जिनेन्द्र की पूजा की और वहाँ विराजमान महामुनियों की वंदना की, ऐसा आगम का वचन है। अतः जिनवर स्वामी नहीं पाये, यह कैसे संभव है ?

उसका समाधान करते हुए मुनिराज कहते हैं कि जिनदेव और जिनप्रतिमा की पूजा अनंत बार की; पर आत्मा वीतरागदेव है, उसकी पूजा नहीं की।

भक्ति दो प्रकार की होती है। जिनराज की भक्ति शुभराग है, यह भक्ति अनंत बार की

है। परंतु स्वयं वीतराग मूर्ति है, उसकी सन्मुखता की भावना, वह भावभक्ति है, जो कभी नहीं की। आनंदमूर्ति आत्मा स्वयं जिनराज है, उसका आदर नहीं किया, भावभक्ति कभी नहीं की।

प्रभु! अभव्य आपकी पूजा नहीं कर सकता अर्थात् जिसे राग की रुचि है, वह आपकी परमार्थ पूजा नहीं कर सकता। वह तो राग की पूजा करता है। वीतराग परिणति से जिनराज की पूजा करना भावभक्ति है। अकषायी परिणति से अकषायस्वभाव की एकाग्रता कभी की नहीं, वीतरागी परिणति द्वारा वीतरागी निजपरमात्मा की पूजा कभी की नहीं।

राग की रुचि करनेवाले का क्षण-क्षण भयंकर भावमरण होता है, पर उसे खबर नहीं है। यहाँ कहते हैं कि अनंत काल में भावभक्ति नहीं की, भावभक्ति तो सम्यग्दृष्टि की ही होती है। प्रभु! अभव्य आपकी वंदना नहीं करता है, क्योंकि राग की रुचि होने से वह राग की ही वंदना करता है। वीतरागता का आदर नहीं करता।

वीतराग शुद्धात्मस्वरूप की अंतर्दृष्टि और लीनता यह भावभक्ति है। अरबों रुपये खर्च करके मंदिर बनाया हो, पर इससे उसने भावभक्ति नहीं की। जिनराज की भावभक्ति तो सम्यग्दृष्टिवंत की ही होती है।

भगवान आत्मा ने अनंत बार भवभ्रमण किया, पर सम्यग्दर्शन और जिनराज स्वामी को नहीं पाया; अनंत बार समवसरण में गया, पर जिनराज स्वामी नहीं पाये; अनंत बार जिन भगवान की द्रव्यभक्ति की, पर भावभक्ति नहीं की; इसलिये जिनराज स्वामी को कभी नहीं पाया। भावभक्ति सम्यग्दृष्टि की ही होती है और कभी सम्यग्दर्शन नहीं पाया। अतः भावभक्ति नहीं की होने से कभी जिनराज स्वामी को प्राप्त नहीं किया।

अंदर आनंदकंद भगवान आत्मा विराजमान है, पर उस ओर झुकाव एक समय भी नहीं किया, अतः भावभक्ति कभी नहीं की। बाह्य भक्ति तो सांसारिक प्रयोजन से की है, अतः उसे यहाँ नहीं गिना। शुद्धात्मा का विचार करे, ध्यान करे, उसमें कैलि करे, बहिर्मुख दृष्टि छोड़कर अंतर्मुख दृष्टि करना भावभक्ति है; क्योंकि स्वयं ही जिनराज है।

'भव भव में जिन पूजन कीनी' पर वह तो शुभराग है, आत्मकल्याण का मार्ग नहीं। भगवान आत्मा राग से निवृत्तिस्वरूप है। राग में प्रवृत्ति आत्मा का स्वरूप नहीं, तो फिर बाहर

की बात कहाँ रही, जिसका जड़ या पर के साथ संबंध है। अत: राग का संबंध छोड़कर अबंध स्वभाव का संबंध करें तो भावभक्ति है। जिसे राग की रुचि है, उसे संसार का ही प्रयोजन है। राग का प्रेम होने से वीतरागस्वरूप से द्वेष है।

भगवान आत्मा की परमात्मस्वरूप लक्ष्मी जिनसंपदा में एकाग्रता न करके, राग की आपदा को जिसने संपदा माना है, उसे राग का प्रेम है। और जिसे राग का प्रेम हो उसे वीतरागस्वरूप से द्वेष है। जिसे वीतरागस्वरूप की रुचि होती है, उसे राग की रुचि नहीं होती, अत: उसे भावभक्ति होती है। अज्ञानी को होनेवाली बाह्य भक्ति, भक्ति नहीं मानी जाती। अत: अज्ञानी ने कभी जिनराज की भक्ति नहीं की, ऐसा कहा है। अंतर वीतरागस्वभाव की भक्ति बिना ऊपरी बाह्य भक्ति आदि सब निष्फल हैं।

ज्ञानी वीतराग का दास है, अज्ञानी राग का दास है। अभी जिसे पाप प्रवृत्ति से निवृत्त होकर देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का भी ठिकाना नहीं, उसकी क्या बात? पर यहाँ कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति भी भावभक्ति नहीं। अरे रे! भाई! तू कहाँ जा रहा है? जिसे राग की रुचि है, वह राग में घूमेगा।

आनंदधाम में आनंद की परिणति पूर्णता का कारण है। यहाँ कहते हैं कि ज्ञानी जीव ही जिनराज का दास है। राग की रुचिवाले को अनंत काल में जिनवर स्वामी नहीं मिले, क्योंकि जिसे राग की रुचि है, उसके स्वामी जिनराज ही नहीं रहे, उसका स्वामी तो राग हो गया। जिसे जिनराज मिले, वह जिनराज समान हो जाता है। उसके बिना जिनराज की पूजादि करे, पर वह लोक-दिखावा की पूजा भक्ति है, वह किस काम की?

विश्वस्वरूप जिनेन्द्र का संगम कभी नहीं हुआ। अपना आत्मा स्वयं जिनेन्द्रदेव है, उसका संगम नहीं हुआ अर्थात् उसका सेवन कभी नहीं हुआ। यदि सम्यग्दर्शन हो तो परमात्मा का परिचय हो और यही जिनस्वामी को पाना है। अज्ञानी को अनंत काल से राग का परिचय है, अत: उसे अनंत काल में कभी जिनस्वामी और सम्यग्दर्शन से भेंट नहीं हुई।

इसप्रकार सम्यग्दर्शन की दुर्लभता बताकर यह मनुष्य भव पाकर उसके प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं। ●●

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

अब ज्ञानोपयोग का वर्णन करते हैं :-

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदिओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जय केवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च॥५॥

जीव उपयोगस्वभावी है। उसका ज्ञानोपयोग त्रिकाल है। उसकी पर्याय के आठ भेद हैं। कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन अज्ञान हैं; सम्यक्मति-श्रुत-अवधि, मनःपर्यय और केवल ये पाँच सम्यग्ज्ञान हैं। इस ज्ञानोपयोग के प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो भेद हैं। देखिये! ज्ञानापेक्षा ये सब प्रयोजनभूत हैं। जैसा सत् है, वैसा जानने का ज्ञान का स्वभाव है।

ज्ञायक चैतन्यबिम्ब आत्मा को भूलकर जो ज्ञान पर को जानता है, ऐसे मतिज्ञान को कुमतिज्ञान कहते हैं। उसीप्रकार ज्ञायकस्वभाव क्या है? उसको नहीं जानना और शास्त्र पढ़-पढ़कर विपरीत समझना, यह सब कुश्रुतज्ञान है। अज्ञानी का ग्यारह अंग और नौ पूर्व का अध्ययन भी कुमति और कुश्रुत ज्ञान है। जिसको चिदानंदस्वभाव के भान से - समझ से सम्यग्ज्ञान हुआ है, उसको शास्त्र वगैरह का जाननेवाला ज्ञान भी सम्यक् मति-श्रुतज्ञान है। यह मति-श्रुत परोक्ष है। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान एकदेश प्रत्यक्ष हैं। केवलज्ञान संपूर्ण प्रत्यक्ष है। उनमें अज्ञानी को कुअवधिज्ञान होता है, ज्ञानी को सुअवधिज्ञान होता है। मनःपर्ययज्ञान तो ज्ञानी मुनि को ही होता है, और केवलज्ञान तो अरहंत और सिद्ध परमात्मा को होता है।

सर्वज्ञदेव के देखे हुए छह द्रव्यों में जीवद्रव्य भिन्न है। उस जीवद्रव्य का स्वभाव उपयोग है। उसके ज्ञान और दर्शन दो भेद हैं। वह ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग त्रिकाली है। दर्शनोपयोग की पर्याय के चार भेद हैं - वे प्रत्येक स्वतंत्र हैं, यह पहिले कह दिया है।

ज्ञानोपयोग की पर्याय के आठ भेद हैं। उनमें कुमति, कुश्रुत तथा सम्यक्मति श्रुत, यह चार प्रकार का परोक्ष है। कुअवधि तथा सम्यक्अवधि और मनःपर्यय, ये एकदेश प्रत्यक्ष हैं, और केवलज्ञान संपूर्ण प्रत्यक्ष है। उनका विशेष वर्णन अब कहा जायेगा।

इन छह द्रव्यों में से जीवद्रव्य का वर्णन चलता है। जीव में त्रिकाल ज्ञानगुण है। उस गुण की पर्याय में मतिज्ञान वगैरह आठ भेद हैं। वे आठों भेद जीव की स्वयं की पर्याय हैं। ज्ञानोपयोग जीव का स्वयं का स्वभाव है, जीव स्वयं उपयोगमय है। ऐसा जाने तो त्रिकाल ज्ञायक चैतन्यद्रव्य के आदर से धर्म हो।

मति, श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान मिथ्यात्व के उदय से विपरीताभिनिवेशरूप होते हैं, उसको अज्ञान कहते हैं। जीव स्वयं के स्वभाव को भूलकर पुण्य-पाप मैं हूँ, मैं देह की क्रिया करता हूँ; ऐसा उल्टा-विपरीत अभिप्राय करता है, तब उसके मति-श्रुतज्ञान, कुमति और कुश्रुत हैं। पर के कारण मुझे ज्ञान होता है, ऐसा माननेवाले अज्ञानी के ज्ञान को कुमति कुश्रुत कहा जाता है। अज्ञानी को कभी ऐसा ज्ञान प्रगट होता है कि स्वर्ग-नरक को देखा जा सकता है, उसको विभंगावधि ज्ञान कहा जाता है। वह अज्ञान है, फिर भी जीव के स्वयं के कारण से हुआ है।

सर्वज्ञ द्वारा कथित यथार्थ तत्त्व से उसकी विपरीत मान्यता होती है। उसको कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ये ज्ञान भी स्वयं की योग्यता से हैं, पर के कारण से नहीं है। ऐसा ज्ञान प्रगट हो, उसका कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि शुद्ध आत्मतत्त्व का तो उसको भान नहीं है।

यहाँ तो जीव के उपयोग के भेदों का कथन है। उपयोग के जितने भेद होते हैं, वे सब भेद जीव के स्वयं के कारण से ही हैं, कोई निमित्त के कारण से वे नहीं हैं। उपयोगमय जीव है। शुद्ध चैतन्यतत्त्व क्या है ? उसके भान बगैर ज्ञान के क्षयोपशम से अज्ञानी सात द्वीप समुद्र को अथवा स्वर्ग-नरकादि मात्र पर को ही जानता है। यह ज्ञान की महिमा नहीं है।

जो ज्ञान अंतरस्वभाव के संमुख होकर शुद्ध आत्मा को जाने, वह ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है और वही मोक्ष का कारण है। उपयोग की अवग्रह आदि पर्याय इंद्रिय या मन के कारण नहीं होती, फिर भी पर के कारण मेरा ज्ञान होता है, ऐसा माननेवाला जीव मिथ्यात्व के वशीभूत हुआ है, और उसका ज्ञान कुज्ञान है। तथा शुद्ध आत्मतत्त्व वगैरह तत्त्वों की विपरीतता से रहित यथार्थ

ज्ञान से सम्यग्दृष्टि को मति-श्रुत-अवधिज्ञान सम्यक् होते हैं। अज्ञानी के मति-श्रुत-अवधिज्ञान वे मिथ्याज्ञान हैं और सम्यग्दृष्टि के मति-श्रुत-अवधिज्ञान सम्यक् होते हैं। इसप्रकार कुज्ञान के तीन भेद तथा सुज्ञान के तीन, ऐसे छह भेद हुये। इसके बाद मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान, ये दो ज्ञान हैं, वे तो सुज्ञान (सम्यक्) ही होते हैं। मिथ्यादृष्टि को ये ज्ञान नहीं होते।

ज्ञान के आठ उपयोग में जीवद्रव्य का स्वतंत्र परिणमन है। पूर्व के कर्म ज्ञान को रोकते हैं, ऐसा ज्ञानी नहीं मानता। कर्म तो जड़ हैं। मेरी जितनी योग्यता है, उतने ज्ञान का विकास हुआ है। ज्ञानी को विशेष ज्ञान का उघाड़ (प्रगटता) न हो और विशेष धारणा वगैरह न रहती हो, तो वह यहाँ दूसरे की भूल (दोष) नहीं निकालता। शुद्ध स्वभाव को तथा प्रयोजनभूत तत्त्वों को तो वह ज्ञान से बराबर जानता है, किंतु अवधिज्ञान वगैरह न हो तो वहाँ वह खेद नहीं मानत। इसका नाम 'अज्ञान परीषह' है। विशेष ज्ञान का उघाड़ न हो, तब भी प्रयोजनभूत तत्त्वों के ज्ञान में संदेह नहीं होता। 'जैसा निमित्त हो, वैसा ज्ञान होता है' अर्थात् निमित्त से ज्ञान होता है, ऐसी मान्यता अज्ञान की है। ज्ञान तो जीव के स्वयं के उपयोग की योग्यतानुसार ही होता है। उस समय वैसा ज्ञेय निमित्त होता है, लेकिन ज्ञेय के लिये ज्ञान नहीं होता। ज्ञान के एक अंश को भी जिसने पर के कारण माना, उसने जीवद्रव्य त्रिकाली ज्ञानस्वभावी है, इसको नहीं जाना।

निश्चय से जीव का स्वभाव संपूर्ण निर्मल, अखंड, प्रत्यक्ष, केवलज्ञानस्वरूप है। किंतु व्यवहारनय से अनादि से, कर्मबंध के निमित्त से, और मतिज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम से और वीर्यांतराय के क्षयोपशम से, बहिरंग इंद्रियों और मन के अवलंबन से - मूर्त-अमूर्त पदार्थों को एकदेश परोक्षरूप, विकल्पसहित अर्थात् विशेषसहित जानता है; ऐसे मतिज्ञानासहित जीव है।

देखिये! जीव के एक मतिज्ञान पर्याय आयी है। यह मतिज्ञान परोक्ष है, किंतु व्यवहार में उसको प्रत्यक्ष कहने में आता है, क्योंकि वह सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष है। इस मतिज्ञान के समय इंद्रियों और मन का निमित्त होता है, किंतु ज्ञान तो स्वयं की योग्यता से ही होता है। इसप्रकार से निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, वह दो द्रव्यों की एकता नहीं बताता, किंतु दो द्रव्यों की भिन्नता बताता है।

मतिज्ञान में इंद्रियाँ और मन तो बाह्य निमित्त हैं और अंदर वीर्य का क्षयोपशम, वह

मतिज्ञान का सहकारी कारण है। वीर्यांतराय का क्षयोपशम तो जड़ है किंतु जो वीर्य का क्षयोपशमभव है, वह मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, आनंद, सुख, चारित्र, सम्यक्त्व आदि सभी पर्यायों में सहकारी कारण है। कोई भी पर्याय वीर्य बिना नहीं होती। ज्ञान आदि की पर्याय की योग्यतानुसार वीर्य का क्षयोपशमभाव होता है, केवलज्ञान वगैरह में क्षायिक वीर्य सहकारी कारण है। देखिये! शरीर के बल की बात नहीं ली, कोई भी कार्य प्रगट होने में आत्मबल ही सहकारी कारण है। ज्ञान और वीर्य दोनों का समय तो एक ही है, तो भी उसमें वीर्य को ज्ञान का सहकारी कारण कहा है।

आत्मा के ज्ञान, चारित्र, सम्यक्त्व आदि सभी गुणों की पर्याय में वीर्य सहकारी कारण है। कोई इसप्रकार कहे कि सम्यग्दर्शन में जीव का पुरुषार्थ नहीं होता तो उसकी बात झूठी है। यहाँ तो कहते हैं कि अज्ञानी को उसके विपरीत ज्ञान वगैरह में भी वीर्य सहकारी कारण है; वीर्य अर्थात् आत्मबल, आत्मशक्ति।

विपरीत पर्याय या सीधी पर्याय – कोई भी पर्याय हो, उसमें वीर्य का परिणमन भी साथ ही है। अर्थात् जीव को पर्याय की स्वतंत्रता है। जीव को स्वयं की पर्याय में कोई दूसरे का सहयोग-सहकार नहीं है। केवलज्ञान प्राप्ति में वज्रवृषभनाराच संहनन कुछ मदद नहीं करता, किंतु उस समय का अनंतवीर्य ही सहकारी कारण है; तो भी केवलज्ञान को और अनंतवीर्य को प्रगट होने में समय भेद नहीं है। सम्यग्दर्शन के समय उसप्रकार का पुरुषार्थ साथ ही परिणमता है, उसे बताने के लिये यहाँ अनंतवीर्य को सहकारी कारण कहा है। बाहरी सहकारी कारण की बात को यहाँ नहीं लिया, किंतु स्वयं के वीर्य की सह-कारण की अपेक्षा पहिचान करायी है।

मति-श्रुतज्ञान वास्तव में तो परोक्षरूप है। फिर भी उनको सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष कहने में आता है। क्योंकि लोक में ऐसा व्यवहार है कि 'मैंने घड़ा प्रत्यक्ष देखा है', इस कारण मतिज्ञान को सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। मतिज्ञान पर्याय घटज्ञानरूप में परिणमित हुई है, वहाँ घट का ज्ञान तो परोक्ष है; लेकिन 'मैंने घड़ा देखा है, वस्त्र नहीं', ऐसा बराबर निर्णय करता है, इसलिये व्यवहार में उस ज्ञान को प्रत्यक्ष भी कहा जाता है।

इसप्रकार मतिज्ञान का वर्णन किया। (क्रमशः)

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न– श्री समयसार गाथा ३ में कहा है कि एक द्रव्य अन्य द्रव्य का स्पर्श नहीं करता। अत: जीव शरीर को तथा एक शरीर अन्य शरीर को स्पर्श नहीं करता। जीव भोजन नहीं कर सकता, बोल नहीं सकता, अन्य पदार्थों को चुरा नहीं सकता, धनधान्यादि ग्रहण नहीं कर सकता, तो मुनिराज हिंसादि पापों का त्याग क्यों करते हैं ?

उत्तर– एक द्रव्य अन्य द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, यह तो महा सिद्धांत है, वस्तुस्वरूप ऐसा ही है। परद्रव्य की क्रिया से जीव को बंध होता ही नहीं। परंतु परद्रव्य के लक्ष्य से होनेवाले रागादिभाव जीव को बंध के कारण होने से मुनिराज अपने हिंसादि पाप भावों को त्याग रकते हैं, अत: पाप भावों के त्याग के निमित्तभूत बाह्य हिंसादि परद्रव्यों की क्रिया का त्याग किया, ऐसा उपचार से कहा जाता है।

प्रश्न– परपदार्थ बंध के कारण नहीं हैं तो उनके संग का निषेध क्यों किया जाता है ?

उत्तर– यद्यपि बंध के कारण तो जीव के परिणाम ही हैं, बाह्य वस्तु नहीं। तथापि बाह्य वस्तु के आश्रय से होनेवाले अध्यवसान को छुड़ाने के लिये उसके आश्रयभूत बाह्य वस्तु का निषेध किया जाता है। बाह्य वस्तु के आश्रय बिना अध्यवसान नहीं होते, अत: अध्यवसान का निषेध करने के लिये बाह्य वस्तु के संग का निषेध करते हैं, उसका लक्ष्य छुड़ाते हैं।

प्रश्न– एक ओर कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि परद्रव्य को भोगते हुए भी बँधता नहीं, और दूसरी ओर कहते हैं कि जीव परद्रव्य को भोग नहीं सकता, तो दोनों में से सत्य किसे मानें ?

उत्तर– ज्ञानी या अज्ञानी कोई भी जीव परद्रव्य को नहीं भोग सकता, परंतु अज्ञानी मानता है कि मैं परद्रव्यों को भोग सकता हूँ। अत: यहाँ अज्ञानी की भाषा में अर्थात् व्यवहार से

कहते हैं कि परद्रव्यों को भोगते हुए भी ज्ञानी बंधता नहीं है, क्योंकि ज्ञानी को राग में एकत्वबुद्धि नहीं है। अतः परद्रव्य की क्रिया होते हुए भी ज्ञानी को बंध नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

ज्ञानी को चेतन द्रव्यों का घात होते हुए भी बंध नहीं होता – इससे ऐसा नहीं समझना चाहिये कि स्वच्छंद होकर परजीव का घात होने में नुकसान नहीं। इसका आशय यह है कि जिसे राग की रुचि छूट गयी है और आत्मा के आनंद का भान और वेदन वर्तते हुए भी निर्बलता से राग आता है तथा चारित्र दोष के निमित्त से होनेवाले चेतन के घात से जो अल्पबंध होता है, उसे गौण करके, ज्ञानी को बंध नहीं होता—ऐसा कहा है। परंतु जिसे राग की रुचि है और मैं परद्रव्य को मार सकता हूँ, भोग सकता हूँ; ऐसी रुचिपूर्वक भाव में (राग में) एकत्वबुद्धि होने से हिंसाकृत बंध अवश्य होता है।

परसन्मुखता से होनेवाले परिणाम की एकत्वबुद्धि की अपेक्षा अध्यवसान कहकर बंध का कारण कहा है। पर में एकत्वबुद्धि हुए बिना जो राग होता है, उसे भी अध्यवसान कहते हैं; परंतु उसमें मिथ्यात्व का बंध नहीं होता, अल्प राग का बंध होता है– उसे गौण करके बंध नहीं होता, ऐसा कहते हैं। स्वभाव सन्मुख परिणाम को भी स्वभाव में एकत्वरूप होने से अध्यवसान कहते हैं, परंतु वह अध्यवसान मोक्ष का ही कारण है।

देव, शास्त्र, गुरु और धर्म का स्वरूप समझे, उसे सम्यग्दर्शन होता ही है। ऐसे संस्कार लेकर कदाचित् अन्य भव में चला जाये तो वहाँ भी यह संस्कार फलेगा।

प्रश्न– प्रमाण ध्रुवद्रव्य से बड़ा है या छोटा ?

उत्तर– प्रमाण में व्यवहार का निषेध न होने से वह पूज्य नहीं। ध्रुव आश्रय योग्य होने से पूज्य है, अतः बड़ा है। मात्र त्रिकाली भगवान (ध्रुव) दृष्टि में आने से पूज्य व बड़ा है।

प्रश्न– दृष्टि के विषय में वर्तमान पर्याय शामिल है या नहीं ?

उत्तर– दृष्टि के विषय में मात्र ध्रुवद्रव्य ही आता है। पर्याय तो द्रव्य को विषय करती है, परंतु वह ध्रुव में शामिल नहीं होती, क्योंकि वह विषय करनेवाली है। विषय और विषयी भिन्न-भिन्न हैं।

प्रश्न– प्रवचनसार में उत्पाद-व्यय-ध्रुव इन तीनों अंशों को पर्याय का भेद कहा है, उसमें ध्रुव अंश और त्रिकाली ध्रुव में क्या अंतर है ?

उत्तर– ध्रुव अंश और त्रिकाली ध्रुव दोनों एक ही हैं। भेद की अपेक्षा त्रिकाली को अंश कहा है, पर वह अंश त्रिकाली ध्रुव ही है।

प्रश्न– पर्याय के षट्कारक स्वतंत्र हैं, पर्याय द्रव्य को नहीं स्पर्शती तो भी उस पर्याय को द्रव्य सन्मुख होना चाहिये – ऐसा क्यों कहते हैं ?

उत्तर– पर्याय के षट्कारक स्वतंत्र हैं, पर्याय द्रव्य को नहीं स्पर्शती, तो भी पर्याय की स्वतंत्रता देखनेवाले का लक्ष्य द्रव्य पर ही होता है।

प्रश्न– पर्याय स्वतंत्र होते हुए भी उसका लक्ष्य द्रव्य पर क्यों होता है ?

उत्तर– द्रव्य पर लक्ष्य हो, तभी पर्याय की स्वतंत्रता की यथार्थ श्रद्धा हो सकती है, पर की ओर लक्ष्य होने से नहीं। और पर्याय की स्वतंत्रता के निर्णय का प्रयोजन भी द्रव्य सन्मुख होने से ही सिद्ध होता है। द्रव्य सन्मुख होने के प्रयोजन से ही पर्याय की स्वतंत्रता दिखती है।

प्रश्न– द्रव्य और पर्याय को भिन्न-भिन्न सिद्ध करने का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर– त्रिकाली द्रव्य और प्रकट पर्याय दोनों भिन्न-भिन्न धर्म अस्तिरूप हैं। उन दोनों धर्मों का परस्पर भिन्न अस्तित्व सिद्ध करना ही प्रयोजन है।

प्रश्न– मुनि को आहार की वृत्ति उठने पर भी मुनिदशा रहती है, तो वस्त्र रखने की वृत्ति उठे उसमें क्या दोष ?

उत्तर– मुनि को संयम के हेतु शरीर के निभाव के लिये आहार की वृत्ति उठती है, और वस्त्र रखने का भाव तो शरीर से ममत्व का प्रतीक है; अतः वस्त्र रखने की वृत्ति रहते हुये मुनिदशा नहीं रहती।

प्रश्न– एक ओर देह को भगवान आत्मा का देवालय कहा जाता है; दूसरी ओर उसे मृतक कलेवर कहते हैं, तो सही क्या है ?

उत्तर– देह तो मृतक कलेवर ही है, यही सत्य है। पर भगवान आत्मा की महिमा बताते हुए

देह में देवालय का उपचार करके भी देव की महिमा की जाती है।

प्रश्न– मात्र द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से निश्चयाभासी हो जाते हैं ?

उत्तर– नहीं, द्रव्यानुयोग के अभ्यास से निश्चयाभासी नहीं होते; पर व्यवहार है ही नहीं, ऐसा निषेध करने से निश्चयाभासी होते हैं। इसीलिये कहा है कि जिसे निश्चय का अतिरेक हो उसे व्यवहार ग्रहण करना और जिसे व्यवहार का अतिरेक हो, उसे निश्चय ग्रहण करना चाहिये।

प्रश्न– अशुभ की अपेक्षा तो शुभ ठीक है या नहीं ?

उत्तर– आत्मभान होने पर शुभ अशुभ दोनों भावों को बंध का कारण जानने के बाद व्यवहार से अशुभ की अपेक्षा शुभ को ठीक कहा जाता है, पर यह बात ज्ञानी की अपेक्षा है। चरणानुयोग में तीव्र कषाय घटाने के लिये मन्दकषाय करना, ऐसा भी कहा जाता है। पर यहाँ अध्यात्म शास्त्रों में तो आत्मा में राग की गंध भी नहीं – यह बात है। वस्तु की अपेक्षा आत्मा भगवानस्वरूप है, इस पक्ष से उसका आश्रय न करके राग के पक्ष के राग का आश्रय किया – वह मिथ्यादृष्टि है।

अहो गजब बात है ! वस्तु का लक्षण त्रिकाली ज्ञान-दर्शन है। परंतु जिसे पर्याय में वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान प्रकट हुआ है, उसे ऐसा आत्मा ज्ञात होता है। अनंत-अनंत जन्म-मरण के नाश का उपाय अलौकिक है। व्यवहाररत्नत्रय, देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का राग; ये तो व्यवहार से भी आत्मा के लक्षण नहीं। मति-श्रुत-ज्ञान की प्रगट पर्याय को व्यवहार लक्षण कहा है।

प्रश्न– स्त्री-पुत्रादि को लुटेरों की टोली मानने से घर में झगड़ा होता है ?

उत्तर– परद्रव्य को अपना मानने से ही अंदर मिथ्यात्व का बड़ा झगड़ा होता है, जिससे चार गति का दुःख भोग रहा है। कुटुंबीजन स्वार्थ के सगे हैं, यह तो हकीकत है। अपने स्वार्थ-पोषण के लिये प्रेम करते हैं, ऐसा समझकर अंदर से ममत्व छोड़ना है। यह तो अनादि का झगड़ा छुड़ाने की बात है। लोग १५ अगस्त को स्वतंत्रतादिवस कहते हैं। पर से सुख की वांछारूप दीनता छोड़कर स्वभाव में सुख मानना ही सच्ची स्वतंत्रता है। उस अविनाशी स्वराज्य को भोगनेवाला सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा है, वही सच्चा राजा है।

बाह्य राज्य को भोगनेवाला राजा तो 'पर' से सुख लेने की आकुलता की ज्वाला को भोगता है, आत्मशांति को नहीं।

प्रश्न– आप कहते हैं कि अकस्मात कुछ भी नहीं होता, अतः ज्ञानी निःशंक और निर्भय है; पर पेपर में तो अकस्मात् दुर्घटना के बहुत समाचार आते हैं ?

उत्तर– जगत में अकस्मात् कुछ होता ही नहीं। जिस द्रव्य की जो पर्याय जिस काल में होना हो, वही होती है। देह छूटने का काल जिस क्षेत्र और जिस निमित्त से हो, उसी प्रकार देह छूटती है। उल्टा-सीधा या अकस्मात् किसी पदार्थ का परिणमन नहीं होता, व्यवस्थित ही होता है।

प्रश्न– आपके समयसार में अध्यात्म का विषय सूक्ष्म है। हम तो यात्रा करने आये हैं, अतः हमें कोई सरल बात बताइये ?

उत्तर– हम तो सबको भगवान देखते हैं। अन्दर नित्यानंद प्रभु त्रिकाली चैतन्य भगवान बिराजमान है, उसके आश्रय से धर्म होता है। विकल्प और पर का लक्ष्य छोड़कर अंदर में भूतार्थस्वभावी भगवान का आश्रय ही करनेयोग्य कार्य है।

प्रश्न– व्रत-तप आदि सब विकल्प है तो इन्हें करना या नहीं ?

उत्तर– करने, न करने की बात नहीं। सम्यग्दर्शन के बाद पाँचवें गुणस्थान में वे विकल्प आते हैं, वे शुभराग हैं, धर्म नहीं; ऐसा ज्ञानी जानते हैं। मिथ्यादृष्टि को ऐसे विकल्प आने पर शुभराग से पुण्य बँधता है – पर वह उस राग से धर्म मानता है, उसे अपना स्वरूप मानता है, अतः मिथ्यात्व भी बँधता है। शुभ छोड़कर अशुभ में जाने की बात नहीं है, परंतु शुभराग अपना स्वरूप नहीं, ऐसा जानकर शुद्धता प्रगट करने की बात है।

नए प्रकाशन :

ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव मूल्य : ४ रुपये

नियमसार मूल्य : ७ रुपये ५० पैसे

समाचार दर्शन

सोनगढ़ : पूज्य स्वामीजी जामनगर से राजकोट होते हुए सोनगढ़ पधार गये हैं। उनका स्वास्थ्य ठीक है। पैर की उंगली में मोच आ गयी थी, जिसके कारण चलना-फिरना संभव नहीं रहा था। अत: उनके मद्रास, बंगलौर और बम्बई के कार्यक्रम निरस्त कर दिये गये हैं। पैर की स्थिति निरंतर सुधार पर है, शीघ्र ही ठीक हो जावेगी, चिंता जैसी कोई बात नहीं है। अब गुरुदेव सोनगढ़ ही विराजेंगे तथा प्रवचन आदि पूर्ववत् चलेंगे।

महावीर जयंती-महोत्सव सानंद संपन्न

ग्वालियर : श्री महावीर जयंती महोत्सव समिति, अखिल जैन समाज, ग्वालियर के तत्त्वावधान में स्थानीय चंपाबाग में विशाल आमसभा का आयोजन किया गया। सभा की अध्यक्षता ग्वालियर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री चांदमलजी लोढ़ा ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने अपने एक घंटे के प्रभावशाली भाषण में भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा का सूक्ष्म विवेचन किया। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बनाये गये।

- महेन्द्रकुमार जैन, ग्वालियर

फिरोजाबाद : नगर में महावीर जयंती-महोत्सव दिनांक १-२ तथा ३ अप्रेल १९७७ को पी०डी० जैन कालेज के प्रांगण में धूमधाम से मनाया गया। बाहर से पधारे अध्यात्म प्रवक्ता डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, जयपुर तथा वाणीभूषण पंडित ज्ञानचंदजी, विदिशा के मार्मिक प्रवचनों से जनता को अपूर्व धर्मलाभ हुआ। श्री दिगम्बर जैन आईडियाल मान्टेसरी स्कूल, मथुरा द्वारा भगवान महावीर अभिनय प्रदर्शित किया गया। इस अवसर पर एक विराट कवि सम्मेलन का भी आयोजन किया गया।

- सूरजभान जैन, फिरोजाबाद

रतलाम : प्रतिवर्षानुसार इस वर्ष भी महावीर जयंती का कार्यक्रम सानंद संपन्न हुआ। प्रात: प्रभातफेरी निकाली गयी। रात्रि को एक विशाल आमसभा का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री श्री डॉ० प्रेमसिंहजी राठौड़ ने की। प्रमुख वक्ता बड़ौदा के श्री महामंडलेश्वर शिवानंदजी शास्त्री थे।

- मोहनलाल छाबड़ा

कटंगी : महावीर जयंती उत्सव हर्षोल्लास के साथ संपन्न हुआ। अहिंसा सम्मेलन एवं कवि सम्मेलन का भी आयोजन किया गया। **- सनतकुमार 'जिनेन्द्र', कटंगी**

बाराँ : महावीर जयंती-समारोह बड़े उल्लास एवं आध्यात्मिक वातावरण में संपन्न हुआ। श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन पाठशाला के छात्रों द्वारा आत्मधर्म में प्रकाशित विभिन्न विषयों पर संवाद प्रस्तुत किये गये। श्री प्रो० मानमलजी जैन का प्रवचन हुआ। **- निर्मल जैन**

अमरावती : यहाँ महावीर जयंती सानंद मनायी गयी। प्रातः जुलूस निकाला गया, दोपहर को महिला सभा आयोजित की गयी तथा रात्रि को एक सभा का आयोजन किया गया। जैन बंधुओं ने बड़े ही उत्साह से सभी कार्यक्रमों में भाग लिया। **- उदयचंद जैन**

श्री कानजीस्वामी जन्म-दिवस सानंद संपन्न

जामनगर : पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का ८८वीं जन्म-जयंती समारोह २० अप्रेल १९७७ को यहाँ बड़े ही हर्षोल्लासपूर्वक मनाया गया। लगभग १२५ दूरवर्ती विभिन्न स्थानों से आये ४००० के करीब मुमुक्षु बंधुओं ने इस समारोह में भाग लिया। इस अवसर पर लगभग १७ हजार का साहित्य बिका तथा गुजराती और हिन्दी आत्मधर्म के ४० आजीवन व सैकड़ों वार्षिक ग्राहक बनाये गये। एक लाख रुपयों से भी अधिक की दान की घोषणायें की गयीं। लगातार सात दिन तक पूज्य गुरुदेव के समयसार ग्रंथ के कर्ता-कर्म अधिकार पर बड़े ही मार्मिक प्रवचन हुए। रात्रि को श्री दिगम्बर जैन महावीर मंदिर में पूज्य गुरुदेव से तत्त्वचर्चा होती थी। सभी कार्यक्रम बड़े ही उत्साहपूर्वक संपन्न हुए। **- रमेश जैन**

जयपुर : प्रातः ७.१५ से ८.३० तक श्री दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर में पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का ८८वाँ जन्मदिवस बड़े ही उत्साहपूर्वक मनाया गया। डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल तथा श्री देवीलालजी उदयपुर ने पूज्य गुरुदेव के जीवन पर प्रकाश डाला।

प्रातः ९ से १० तक श्री मुलतान दिगम्बर जैन मंदिर आदर्शनगर में इस अवसर पर एक सभा का आयोजन किया गया। डॉ० भारिल्लजी ने युगपुरुष श्री कानजीस्वामी का संक्षिप्त परिचय दिया।

रात्रि को श्री टोडरमल स्मारक भवन में भी एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में

श्री भारिल्लजी ने पूज्य स्वामीजी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व का सामान्य परिचय दिया तथा बड़ा ही मार्मिक प्रवचन दिया।

इसीप्रकार मंदिर सीवाड़ बाकलीवाल तथा मंदिर छाबड़ान में भी सभाओं का आयोजन किया गया।

उक्त सभी स्थानों पर श्री ताराचंदजी गंगवाल की ओर से सभाओं में उपस्थित जन समूह को 'युगपुरुष श्री कानजीस्वामी' पुस्तक भेंट की गयी। **- अखिल बंसल**

बमनपुरा (म.प्र.) : पूज्य गुरुदेव की ८८वीं जन्म-जयंती बड़े ही उत्साहपूर्वक मनायी गयी। महिला सम्मेलन हुआ, जिसमें उनके जीवन पर प्रकाश डाला गया। श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला के छात्रों ने पूज्य गुरुदेव से संबंधित कविता पाठ किये। **- जीवनलाल जैन**

प्रतापगढ़ : यहाँ पूज्य कानजीस्वामी की ८८वीं जन्म-जयंती विभिन्न कार्यक्रमों के साथ उत्साहपूर्वक मनायी गयी। इस अवसर पर एक सभा का भी आयोजन किया गया, जिसमें विभिन्न वक्ताओं के भाषण हुए। वीतराग-विज्ञान पाठशाला के विद्यार्थियों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये गये। **- सज्जनलाल सांवरियास, प्रतापगढ़**

उदयपुर : आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी का ८८वाँ जन्म-जयंती समारोह बड़े ही उत्साहपूर्वक श्री कुन्दकुन्द स्वाध्याय भवन में आयोजित किया गया। अनेक विद्वानों ने पूज्य गुरुदेव के बताये मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

इसके पूर्व दिनांक ११-४-७७ को श्री दिगम्बर जिन चंद्रप्रभ चैत्यालय उदयपुर का दस वर्षीय महोत्सव विभिन्न कार्यक्रमों के साथ सानंद संपन्न हुआ। **- उग्रसेन बण्डी**

आरोन (म०प्र०) : विगत दिनों यहाँ पूज्य कानजीस्वामी का जन्म-जयंती समारोह बड़े हर्ष के साथ मनाया गया। प्रात: प्रभातफेरी निकाली गयी। इसके पश्चात् प्रवचन हुए। रात्रि को शास्त्र सभा के पश्चात् चौ० हजारीलालजी की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया। पंडित हरिप्रसादजी शास्त्री आदि गणमान्य व्यक्तियों न पूज्य स्वामीजी के बारे में अपने विचार व्यक्त किये तथा श्रद्धासुमन अर्पित किये। इस अवसर पर बालक-बालिकाओं द्वारा विभिन्न रोचक सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये गये। **- विजय कौछल**

ललितपुर : स्थानीय मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में पूज्य कानजीस्वामी की जन्म-जयंती मनायी गयी। विभिन्न वक्ताओं ने पूज्य गुरुदेव के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनकी दीर्घायु की कामना की। **- भानुकुमार जैन, ललितपुर**

जबेरा (म०प्र०) : पूज्य श्री कानजीस्वामी का ८८वाँ जन्मदिवस समस्त जैन समाज द्वारा उल्लासपूर्वक मनाया गया। गुरुदेव से संबंधित भव्य झाँकी भी बनायी गयी। महिला मुमुक्षु मंडल द्वारा 'महिला सम्मेलन' का भी आयोजन किया गया, जिसमें पूज्य कानजीस्वामी के संबंध में विचार व्यक्त किये गये। **- विनोदकुमार जैन, जबेरा**

सरधना : विगत दिनों स्थानीय जैन बालसंघ के तत्त्वावधान में श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ के संस्थापक तथा जैनतत्त्वमर्मज्ञ पूज्य श्री कानजीस्वामी का ८८वाँ जन्मदिवस यहाँ अत्यंत उल्लासपूर्वक श्री अनिलकुमार जैनी 'आनंदी' के संयोजकत्व में मनाया गया। श्री पंडित शरमनलाल जैन 'दिवाकर' शास्त्री ने स्वामीजी को अपनी विनयांजलि अर्पित करते हुए कहा कि स्वामीजी वर्तमान युग में सबसे महान हैं और उनका संपूर्ण जीवन जैन-दर्शन के प्रचार-प्रसार के लिये समर्पित है।

छिंदवाड़ा : श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का ८८वाँ जन्मदिवस समारोह श्री देवेन्द्रकुमारजी पाटनी की अध्यक्षता में सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर श्री प्रबोधचंदजी जैन एडवोकेट, प्रो० राजेन्द्रकुमारजी जैन एवं अशोककुमारजी जैन ने पूज्य स्वामीजी के जीवन पर प्रकाश डाला। स्थानीय भजन मंडली द्वारा भजनादि के कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। इस अवसर पर आत्मधर्म के अनेक आजीवन व वार्षिक ग्राहक बनाये गये। **- सुभाषचंद जैन, छिंदवाड़ा**

शिक्षण-शिविर सानंद संपन्न

कलकत्ता : श्री दिगम्बर जैनधर्म शिक्षा प्रचार समिति, वीर शासन ट्रस्ट के अंतर्गत ५ अप्रेल ७७ से १९ अप्रेल ७७ तक शिक्षण-शिविर सानंद संपन्न हुआ। शिविर में श्री पंडित ज्ञानचंदजी, विदिशा तथा ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी, भोपाल के पधारने से महती धर्मप्रभावना हुई। प्रतिदिन तीनों समय कक्षायें चलती थीं। पंडित ज्ञानचंदजी की कक्षाओं और

प्रवचनों से समाज पर बहुत अच्छा असर पड़ा। वातावरण एकदम आध्यात्मिक हो गया। आगे ऐसे और भी शिविर लगाये जाने की माँग रही। **- रतनलाल गंगवाल**

तिथि परिवर्तन

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड का २० दिवसीय ग्यारहवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर जो दिनांक ८-५-७७ से २७-५-७७ तक होने जा रहा था, वह अब दिनांक १५-५-७७ से ३-६-७७ तक प्रांतिज (जिलाा सावरकांठा, गुजरात) में होने जा रहा है। शिविर का उद्घाटन गुजरात राज्य के **शिक्षा मंत्री श्री नवलभाई नेमचंद शाह** करेंगे। यह समारंभ अध्यात्मप्रवक्ता श्री पंडित खीमचंद जेठालाल शेठ की अध्यक्षता में होगा।

इस मंगलमय पुनीत अवसर पर ब्रह्मचारी श्री परसरामजी इंदौर, ब्रह्मचारी श्री केशवलालजी तलोट, विद्वद्वर्य पंडित खीमचंद जेठालाल शेठ सोनगढ़, पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री वाराणसी, पंडित लालचंदभाई अमरचंद मोदी, पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता फतेपुर, डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, पंडित युगलकिशोरजी 'युगल' कोटा, पंडित रतनचंदजी शास्त्री विदिशा, पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित उत्तमचंदजी सिवनी, पंडित धन्नालालजी सराफ ग्वालियर, पंडित नेमीचंदभाई रखियाल, पंडित कन्नूभाई दाहोद, पंडित राजमलजी भोपाल, पंडित जवाहरलालजी विदिशा, पंडित धन्यकुमारजी बेलोकर शिरपुर, पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी' दिल्ली, श्री रमणलाल माणेकलालजी शाह पाटन, पंडित बाबूभाई नाथालाल महेता फतेपुर आदि के पधारने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है।

- दिनांक १५-५-७७ :- नवनिर्मित शांतिनाथ दिगम्बर जैन चैत्यालय में **श्री गांधी मीठालाल मगनलाल** तथा उनके परिवार द्वारा प्रातः ११ बजे वेदी-प्रतिष्ठा **श्री पंडित धन्नालालजी सराफ ग्वालियर** के तत्त्वावधान में होगी। जिनेन्द्र रथयात्रा का भव्य आयोजन भी किया जायेगा।

- दिनांक २१-५-७७ :- श्री दिगम्बर जैन महासमिति गुजरात प्रदेश का सम्मेलन तथा

गठन **श्री सुकुमारचंदजी जैन मेरठ** की अध्यक्षता में **श्री मिश्रीलालजी गंगवाल** (भूतपूर्व मुख्यमंत्री, मध्य भारत) द्वारा उद्घाटित होकर होगा।

– दिनांक २१ तथा २२–५–७७ :– भगवान महावीर २५००वाँ निर्वाण महोत्सव समापन समारोह प्रसिद्ध उद्योगपति **श्री साहू शांतिप्रसादजी जैन** की अध्यक्षता में होगा। इस समारोह के मुख्य अतिथि सम्मानीय **श्री बाबूभाई जशभाई पटेल** (मुख्यमंत्री, गुजरात) तथा विशेष अतिथि **श्री नवलभाई शाह** (शिक्षामंत्री, गुजरात) होंगे।

– दिनांक २३–५–७७ :– श्रुतपंचमी महोत्सव का कार्यक्रम विभिन्न आयोजनों के साथ संपन्न होगा। इस दिन जिनवाणी रथयात्रा का एक विशाल आयोजन भी किया जावेगा।

– दिनांक ३०–५–७७ :– श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला समिति की कार्यकारिणी की मीटिंग।

– दिनांक ३१–५–७७ :– श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की कार्यकारिणी की मीटिंग।

– दिनांक २–६–७७ :– श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की कार्यकारिणी की मीटिंग।

– दिनांक ३–६–७७ :– श्री वीतराग–विज्ञान विद्यापीठ एवं शिक्षण–प्रशिक्षण शिविर का दीक्षांत समारोह **श्रीमान सेठ रतनलालजी गंगवाल कलकत्ता** की अध्यक्षता में होगा। मुख्य अतिथि **श्री लालचंद हीराचंद दोशी** (अध्यक्ष, श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई) होंगे।

बरायठा : २१ मार्च से २४ मार्च १९७७ तक श्री पंडित धन्नालालजी के पधारने से महती धर्मप्रभावना हुई। प्रतिदिन आपके चारों समय समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला आदि ग्रंथों पर प्रवचन चलते थे। **– विजयकुमार, बरायठा**

बण्डाबेलई : श्री पंडित धन्नालालजी ग्वालियर विगत दिनों यहाँ पधारे। आपके पधारने से समाज को अच्छा धर्मलाभ मिला। **– नाथूराम जैन, बण्डाबेलई**

शाहगढ़ : समाज के अति आग्रह पर श्री पंडित धन्नालालजी ग्वालियर दो दिन के

लिये यहाँ पधारे। आपने गूढ़ तत्त्वों का बड़े ही सुंदर ढंग से विवेचन किया। प्रवचनों में समाज की उपस्थिति अच्छी रही। सभी को अच्छा धर्मलाभ मिला। शाहगढ़ से आप सिद्धक्षेत्र श्री द्रोणगिरिजी भी पधारे। यहाँ आपके दो दिन प्रवचन हुए। **- ब्रह्मचारी नित्यानंद, द्रोणगिरि**

इंदौर : बम्बई-आगरा मार्ग पर स्थित श्रमिक बस्ती विजयनगर में श्री दिगम्बर जैन मंदिर का निर्माण प्रारंभ हो गया है। इस जिनमंदिर में शीघ्र ही भगवान पार्श्वनाथ की १.५ फीट ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान होगी।

श्री दिगम्बर जैन पंचायती मंदिर, संयोगितागंज (छावनी) में दो वेदियों की प्रतिष्ठा ज्येष्ठ शुक्ला ५ सोमवार, २३ मई १९७७ को होगी। प्रतिष्ठाविधि इंदौर के सुप्रसिद्ध पंडित श्री नाथूलालजी शास्त्री संपन्न करावेंगे। **- जयसेन जैन, इंदौर**

खनियांधाना : दिनांक १८-४-७७ से ३०-४-७७ श्री पंडित केशरीचंद्रजी धवल के पधारने से महती धर्म प्रभावना हुई। आपके प्रतिदिन आध्यात्मिक प्रवचन होते थे, जिससे सैकड़ों श्रोताओं को धर्मलाभ मिला। **- सुनील सरल, खनियाधाना**

आवश्यक सूचना : ग्रीष्मकालीन परीक्षा के फार्म भरने की अंतिम तिथि ३१-५-७७ तक बढ़ा दी गयी है। १० जून तक विलंबशुल्क सहित स्वीकार किये जायेंगे। इस वर्ष ग्रीष्मकालीन परीक्षाएँ २ से ४ जुलाई १९७७ को होंगी। **मंत्री, श्री वी० वि० वि० परीक्षाबोर्ड**

सरदारशहर : सेठिया परिवार एवं दिगम्बर जैन समाज के अति आग्रह पर कलकत्ता शिविर से लौटते हुए श्री पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा यहाँ पधारे। २६ अप्रेल से १ मई तक हुए उनके मार्मिक प्रवचनों से समाज ने काफी लाभ लिया। अंत में आपका अभिनंदन किया, जिसमें गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का बहुत-बहुत उपकार माना तथा श्रावण मास में सोनगढ़ आने का संकल्प किया। ध्यान रहे यहाँ एक भी दिगम्बर जैन नहीं था। श्रीमान् स्वर्गीय दीपंचदजी सेठिया स्वामीजी के संपर्क में आये और उन्होंने दिगम्बर धर्म स्वीकार किया। उनके प्रभाव से उनके परिवार के साथ-साथ अनेक परिवार दिगम्बर जैन हो गये।

श्री वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की निरीक्षण रिपोर्ट

समिति के निरीक्षक श्री पंडित गोविंदप्रसादजी जैन खडेरीवाले विगत दिनांक पिपरई,

अशोकनगर, छिंदवाड़ा आदि स्थानों की पाठशालाओं का निरीक्षण करते हुए जयपुर पधारे। यहाँ से वे भीलवाड़ा, टोकर, कुरावड़, उदयपुर, कूंण, लूणदा होते हुए ५ मई, १९७७ को कुशलगढ़ वेदी-प्रतिष्ठा समारोह में भाग लेंगे। इसके पश्चात बागड़ प्रांत में बागीदौरा, कलिंजरा, नौगांवां, डडूका, अरचूना, आंजना, बड़ौदिया होते हुए १५ मई, १९७७ को प्रांतिज शिविर में पहुँचेंगे।

- मंत्री, भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति

ध्यान दीजिये -

आत्मधर्म आपको नियमित रूप से मिलता रहे, इसके लिये वार्षिक शुल्क तत्काल भेज दीजियेगा।

मोक्षमार्ग

एक वीतराग भाव

इसलिए बहुत क्या कहें, जिसप्रकार से रागादि मिटाने का श्रद्धान हो, वही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। जिसप्रकार से रागादि मिटाने का जानना हो, वही जानना सम्यग्ज्ञान है। तथा जिसप्रकार से रागादि मिटें, वही आचरण सम्यक्चारित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है।

- मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २१३

आवश्यकता है :- एक ऐसे रसोइये की जो २०-२५ आदमियों के लिये शुद्ध सात्विक भोजन तैयार कर सके। वेतन एवं अन्य सुविधाएँ योग्यतानुसार।

यदि कोई सज्जन ऐसे रसोइये के परिचय में हों तो कृपया हमें सूचित करें तथा उसे लिखकर हमसे संपर्क करायें।

- मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर-४

पाठकों के पत्र

इस शीर्षक के अंतर्गत पाठकों के आवश्यक पत्रों के महत्त्वपूर्ण अंशों को संक्षेप में प्रकाशित किया जावेगा।

पाठकों के पत्र

दिल्ली से श्री पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', संपादक, सन्मति संदेश लिखते हैं :-

आत्मधर्म जीवंत ज्ञान-सूर्य बनकर जैन समाज के घर-घर में प्रकाश फैला रहा है। आपकी विलक्षण प्रतिभा और सूझ-बूझ से ही यह संभव हो सका है। अब उसे आद्योपांत पढ़ना मुझे अनिवार्य हो गया है।

आपने सत्य की खोज [संमति संदेश में १ वर्ष से मासिक किश्तों के रूप में प्रकाशित] के माध्यम से देव-गुरु-शास्त्र और धर्म की जो सरल परिभाषाऐं इस कथानक में स्पष्ट की हैं, उनकी तथा आपके इस श्लाघनीय सर्वोत्तम प्रयास की सभी पाठकों ने भूरिभूरि प्रशंसा की है। आपकी प्रतिभाशाली तार्किक बुद्धि ने इस विज्ञान के युग में सत्यधर्म के प्रसार-प्रसार में जो सहयोग प्रदान किया है, उसके लिये यह जैन समाज आपका निरंतर ऋणी रहेगा।

भिण्ड (म.प्र.) से श्री पंडित बनारसीदासजी सिंघई लिखते हैं :-

आत्मधर्म ने आपके संपादकत्व में काफी उन्नति की है, इसमें संदेह नहीं है। आत्मधर्म में एक पेज युवकों के लिये अवश्य लिखें जिससे नवयुवक भी इस पत्र को चाव से पढ़ें।

लवाण (राज.) से श्री रमेशचंदजी जैन लिखते हैं :-

जब से यह पत्रिका मैंने मंगवाना शुरु किया है, तभी से मेरे जीवन में एक मोड़ आया है तथा मुझे नयी दिशा प्राप्त हुई है। विशेषकर जब से पत्रिका डॉ० भारिल्लजी के संपादकत्व में आयी है, तब से तो मन एक नयी उमंग और नये उत्साह के साथ भर गया है तथा प्रत्येक आनेवाले माह की आत्मधर्म के लिये समुद्र की सीपी की भाँति मुँह खोले स्वामीजी के वचनामृतरूपी स्वाति बूंद की आशा में सदैव प्यासा बना रहता है।

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें :-

(१) आपको आत्मधर्म निरंतर मिलता रहे, इसके लिये आप या तो मनिआर्डर द्वारा शुल्क भेज दें अथवा स्थानीय मुमुक्षु मंडलों में जमा कराकर उनसे तत्काल आत्मधर्म कार्यालय को पत्र लिखवायें।

(२) विगत वर्ष अधिकांश बंधुओं ने अपनी सदस्यता-शुल्क मुमुक्षु मंडलों के माध्यम से व गाँव-गाँव से एकत्रित करके भेजी थी। अत: इस वर्ष आत्मधर्म के ग्राहकों को मनिआर्डर फार्म भेजने की व्यवस्था नहीं की जा रही है। वैसे भी मनिआर्डर फार्मों का प्रयोग बहुत कम लोग करते हैं, अत: उन पर होनेवाला खर्चा व्यर्थ ही जाता है।

(३) हमने सभी स्थानों पर आत्मधर्म के ग्राहकों की लिस्ट भेजी है, जिन स्थानों पर नहीं पहुँच सकी हो, वहाँ के कार्यकर्ता पत्र डालकर मंगा लें तथा लिस्ट के अनुसार ग्राहकों का चंदा एकत्रित कर यथाशीघ्र भिजवायें।

(४) स्मरण रहे कि जुलाई में उन्हीं सदस्यों को आत्मधर्म भेजा जायेगा जिनकी सदस्यता शुल्क हमें जून माह के अंत तक प्राप्त हो जायेगी।

(५) ड्राफ्ट ATAMDHARMA के नाम से बनवायें।

(६) नये वर्ष का चंदा देते समय अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखा दें।

खनियाधाना (म.प्र.) से श्री मिश्रीलालजी जैन लिखते हैं :-

जिस दिन से आत्मधर्म आपके संपादकत्व में निकलने लगा है, उस दिन से सोनगढ़ के विषय में फैली अनेक भ्रांतियाँ - ज्ञान-गोष्ठी, द्रव्यसंग्रह, समयसार आदि के विवेचन से सहज ही दूर हो गयी हैं। पूज्य स्वामीजी का मैं बहुत ही आभार मानता हूँ, जिन्होंने इस भौतिक युग में शाश्वत सुख के अभिलाषी जीवों को आत्मकल्याण का मार्ग बताया है।

भिण्डर (राज.) से श्री मीठालालजी बोहरा लिखते हैं :-

आत्मधर्म का कई वर्षों से स्वाध्याय करता हूँ। निज स्वभाव पर आध्यात्मिक विषयों को पढ़कर अपूर्व शांति मिलती है। आपके संपादकत्व में प्रकाशित आत्मधर्म एक अमूल्य निधि है। सभी लेख अत्यंत उपयोगी हैं।

आत्मार्थी छात्रों को अपूर्व अवसर

आत्मार्थी विद्यार्थियों के लिये जुलाई १९७७ से टोडरमल स्मारक भवन में ऐसी व्यवस्था की जा रही है कि जिसमें आत्मार्थी छात्र डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के सान्निध्य में रहकर जैनधर्म का सैद्धांतिक अध्ययन चारों अनुयोगों के माध्यम से कर सकें; साथ ही आवश्यक संस्कृत, व्याकरण, न्याय आदि विषयों का भी उनको ज्ञान हो सके।

उक्त छात्रों को राजस्थान विश्वविद्यालय की जैनदर्शन शास्त्री एवं जैनदर्शन आचार्य परीक्षाएँ दिलाई जावेंगी, जो क्रमशः बी.ए. और एम.ए. के बराबर सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हैं।

शास्त्री परीक्षा में प्रवेश के लिये वैकल्पिक विषय संस्कृत लेकर हायर सेकेण्डरी उत्तीर्ण होना आवश्यक है। जिन छात्रों का हायर सेकेण्डरी में वैकल्पिक विषय संस्कृत न होगा, उन्हें एक वर्ष का उपाध्याय कोर्स करना होगा। आवेदन करते समय अपनी शैक्षणिक योग्यता वैकल्पिक विषयों सहित अवश्य लिखें।

शास्त्री का कोर्स तीन वर्ष का होगा। उसके बाद दो वर्ष का कोर्स आचार्य परीक्षा का होगा।

आवास और भोजन की सुविधा निःशुल्क रहेगी। हायर सेकेण्डरी के बाद तीन वर्ष का शास्त्री कोर्स करनेवालों को ३५०) और उसके बाद दो वर्ष का आचार्य कोर्स करनेवालों को ५००) रुपये मासिक सर्विस की गारण्टी दी जावेगी। पर उन्हें भी इस बात का बाण्ड भरना होगा कि वे ५ वर्ष तक उक्त वेतनक्रम पर जहाँ संस्था कहे वहाँ सेवा करने को तत्पर रहेंगे।

आध्यात्मिक वातावरण प्रदान करने के लिये आदरणीय विद्वद्वर्य सर्वश्री पंडित खीमचंदभाई, सिद्धान्ताचार्य पंडित फूलचंदजी वाराणसी, पंडित लालचंदभाई मोदी, पंडित बाबूभाई फतेपुर, नेमीचंदजी पाटनी आगरा, पंडित रतनचंदजी विदिशा, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित शशिभाई भावनगर आदि २० विद्वान प्रतिवर्ष लगभग एक-एक माह आकर जयपुर रहेंगे। डॉ० हुकमचन्दजी भारिल्ल तो यहाँ हैं ही।

वर्ष में एक या दो बार सोनगढ़ भी ले जाया जायेगा। सब कुछ मिलाकर प्रतिवर्ष लगभग एक माह का पूज्य स्वामीजी के सान्निध्य का लाभ मिलेगा।

अतः पूरा-पूरा वैराग्यमय आध्यात्मिक वातावरण प्राप्त होगा।

इच्छुक व्यक्ति तत्काल लिखें।

नेमीचंद पाटनी

श्री टोडरमल स्मारक भवन

ए-४, बापूनगर, जयपुर-४

Reg. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

	रु० पैसे		रु० पैसे
समयसार	१२-००	पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
प्रवचनसार	१२-००	तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
पंचास्तिकाय	७-५०	" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
नियमसार	५-५०	मैं कौन हूँ?	१-००
अष्टपाहुड़	१०-००	पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
समयसार नाटक	७-५०	कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
समयसार प्रवचन भाग १	४-५०	वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
समयसार प्रवचन भाग २	४-५०	अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००	तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००	वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
आत्मावलोकन	३-००	सत्य की खोज (कथानक)	प्रेस में
श्रावकधर्म प्रकाश	३-००	अपने को पहचानिए	०-५०
छहढाला (सचित्र)	१-५०	पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक और उसकी ग्यारह प्रतिमाएँ	०-३५
द्रव्यसंग्रह	१-२०	अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०	मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
प्रवचन परमागम	२-५०	बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
धर्म की क्रिया	२-००	बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०	बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
बालपोथी भाग १	०-२५	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
बालपोथी भाग २	०-४०	सुंदर लेख बालबोध पाठमाला भाग १	०-२५
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	३-००	आगम पथ : कानजीस्वामी विशेषांक	३-००
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००	परमात्म पूजा संग्रह	२-००
परमात्म पूजा संग्रह	२-००		
मोक्षमार्गप्रकाशक	५-००		

*** श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)**

*** पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४**